श्री हेमचन्द्राचार्य

मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य विषयक संपादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

संपादक : विजयशीलचन्द्रसूरि

४७

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद

2009

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)
'मुखरता सत्यवचननी विघातक छे'

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य-विषयक
सम्पादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

४७

सम्पादकः
विजयशीलचन्द्रसूरि

श्रीहेमचन्द्राचार्य

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि
अहमदाबाद
२००९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुसन्धान ४७

आद्य सम्पादक: **डॉ. हरिवल्लभ भायाणी**

सम्पादक: **विजयशीलचन्द्रसूरि**

सम्पर्क: C/o. **अतुल एच. कापडिया**
A-9, जागृति फ्लेट्स, पालडी
महावीर टावर पाछळ
अमदावाद-३८०००७
फोन : ०७९-२६५७४९८१

प्रकाशक: **कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद**

प्राप्तिस्थान: (१) **आ. श्रीविजयनेमिसूरि जैन स्वाध्याय मन्दिर**
१२, भगतबाग, जैननगर, नवा शारदामन्दिर रोड,
आणंदजी कल्याणजी पेढीनी बाजुमां,
अमदावाद-३८०००७

(२) **सरस्वती पुस्तक भण्डार**
११२, हाथीखाना, रतनपोल,
अमदावाद-३८०००१

मूल्य: Rs. 80-00

मुद्रक:
क्रिश्ना ग्राफिक्स, किरीट हरजीभाई पटेल
९६६, नारणपुरा जूना गाम, अमदावाद-३८००१३
(फोन: ०७९-२७४९४३९३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवेदन

'संशोधन'नो सम्बन्ध ज्यां सुधी जैन साहित्य तथा इतिहास साथे छे, त्यां सुधी ते बहुधा वणखेडायेलो प्रदेश छे. रूढ, पछी ते पारम्परिक पण होय अने तद्दन विकृत पण होय-तेवी मान्यताओने सिद्धान्तलेखे तेमज इतिहासलेखे स्वीकारीने चालवुं, ए वर्तमान जैन संघ/समाजनी सहज प्रवृत्ति छे. रूढ मान्यतामां कशुं ज परिवर्तन करी शकाय नहि; तेम करवुं ए मोटो-जघन्य अपराध छे, एवी दृढ धारणा आ प्रवृत्तिना मूळमां छे.

बीजी बाजु, संशोधन करनारनी हालत पण बहुलताए कफोडी होय छे. जो तेनुं करेलुं संशोधन पोतानां मनोवलणोने सानुकूळ लागे तो, व्यवहारचतुर माणस/माणसो भारी सिफतथी ते संशोधनने पोताना नामे चडावी देशे, अने पेला बापडा संशोधकने जाणे के उपकृत करता होय तेवुं वातावरण रचीने तेने हांसियामां धकेली मूकशे. अने जो ए संशोधन परम्पराप्राप्त रूढ - भले ते गलत अने विकृत ज होय - मन्तव्यथी प्रतिकूळ होय तो, ते चतुर लोको पेला संशोधकने एवो तो पींखी नाखशे के पेलो फरीवार संशोधननुं काम करवानी के तेने जाहेर करवानी हिम्मत ज नहि करे. इतिहासविद पं. श्रीकल्याणविजयजीनो दाखलो आनुं श्रेष्ठ उदाहरण छे. तेमनां संशोधनो पोताने अनुकूळ - नडे नहि तेवां - रह्यां त्यां सुधी तो तेमनी भारे इज्जत थती रही. पण ज्यां अमुक वात पोताना स्वच्छन्द साथे जामे तेवी न रही, के तरत ज तेमने पेला व्यवहार-चतुर जनोए 'अभव्य जेवा' जाहेर करी तेमनो तिरस्कार करवामां कोई मणा न राखी !

सार एटलो के अनुकूल तेमज प्रतिकूल बन्ने परिस्थितिओमां स्वस्थ अने अडोल रही शके ते लोको ज सत्य-संशोधनना मार्गे प्रमाणिकपणे प्रमाणभूत काम करी शके. अस्तु.

शी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

श्रीमज्जिनेश्वरसूरि-प्रणीतम्
श्रीमुनिचन्द्रसूरिरचित-विवृत्युपेतम्
छन्दोनुशासनम् — म. विनयसागर — १

श्रीमुनिसोमगणिरचित
कल्पसूत्रलेखन-प्रशस्ति — म. विनयसागर — १७

श्रीकीर्तिसुन्दरगणिकृत
अभयकुमार चौपाई — सं. मुनि धर्मकीर्तिविजय — २६

मुनि मालकृत
श्रीमहावीरपारणास्तवन — सं. मुनि सुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ — ५३
श्रीविजयशेखरकृत
त्रण लघु पद्य रचनाओ — सं. साध्वी समयप्रज्ञाश्री — ५७

The Jain Versions of Rāmāyaṇa
(With Special Reference to Vimalasūri
Guṇabhadra and Śilāṅka) — Dr. Nalini Joshi — ६३

उपाध्याय सकलचन्द्रगणि रचित
ध्यान-दीपिका (संस्कृत) संग्रह ग्रन्थ है — म. विनयसागर — ७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमज्जिनेश्वरसूरि-प्रणीतम्

श्रीमुनिचन्द्रसूरिरचित-विवृत्त्युपेतम्

छन्दोनुशासनम्

म. विनयसागर

क्षीरस्वामी ने छन्द और छन्दस् पदों की नियुक्ति छद धातु से बतलाई है। अन्य आचार्यों के मत से छन्द शब्द 'छदिर् ऊर्जने, छदि संवरणे, छदि आह्लादने दीप्तौ च, छद संवरणे, छद अपवारणे' धातुओं से निष्पन्न है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से छन्द अक्षरों के मर्यादित प्रक्रम का नाम है। जहाँ छन्द होता है वहीं मर्यादा आ जाती है। मर्यादित जीवन में ही साहित्यिक छन्द जैसी स्वस्थ-प्रवाहशीलता और लयात्मकता के दर्शन होते हैं। भावों का एकत्र संवहन, प्रकाशन तथा आह्लादन छन्द के मुख्य लक्षण है। इस दृष्टि से रुचिकर और श्रुतिप्रिय लययुक्त वाणी ही छन्द कही जाती है - 'छन्दयति पृणाति रोचते इति छन्दः।' वैदिक संहिता और काव्यशास्त्रो में विशुद्ध और लयबद्ध उच्चारण छन्दशास्त्र के ज्ञान से ही सम्भव है। वेद के षडङ्ग में छन्द को भी ग्रहण किया गया है। छन्द के प्राचीन आचार्य शिव और बृहस्पति माने जाते हैं। संस्कृत छन्दशास्त्र में आचार्य पिङ्गल द्वारा रचित पिङ्गल छन्दसूत्र ही प्राचीनतम माना जाता है। कुछ विद्वान् पिङ्गल को पाणिनी के पूर्ववर्ती मानते हैं और कुछ विद्वान् पाणिनि का मामा मानते हैं।

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर जैसलमेर ग्रन्थोद्धार योजना फोटोकॉपी नं. २३१, प्लेट नं. ७, पत्र १३ ताड़पत्रीय प्रति १२ वीं सदी का अन्तिम चरण और १३ वीं शताब्दीं का प्रथम चरण की है। इसी फोटोकॉपी के आधार से मैंने दिसम्बर १९७० में इसकी प्रतिलिपि की थी।

१२वीं-१३वीं शताब्दी की छन्दोशासन की प्रति होने के कारण उस शताब्दी पर दृष्टिपात करते हैं तो सुविहितपथप्रकाशक और खरतरविरुदधारक श्रीजिनेश्वरसूरि के अतिरिक्त अन्य कोई इस नाम का आचार्य दृष्टिगत नहीं होता। साथ ही वादी देवसूरि के गुरु सौवीरपायी श्रीमुनिचन्द्रसूरि के अतिरिक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्य कोई इस नाम का आचार्य दृष्टिगत नहीं होता ।

श्रीजिनेश्वरसूरि के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि प्राचीन साहित्य में श्वेताम्बर समाज का दर्शन और कथा साहित्य आदि पर कोई ग्रन्थ नहीं है । दुनिया के समक्ष रखने के लिए इन ग्रन्थों का निर्माण आवश्यक है । इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर श्वेताम्बर परम्परा का प्रथम दर्शन ग्रन्थ **प्रमालक्ष्म**, कथा साहित्य में **लीलावतीकहा** और **कथाकोष** आदि की रचना की । अपने सहोदर एवं गुरुभाई श्रीबुद्धिसागरसूरि को इस बात के लिए तैयार किया कि तुम व्याकरण आदि ग्रन्थों पर नवीन निर्माण करो । उन्होंने भी बुद्धिसागर/पंचग्रन्थी व्याकरण की रचना की । श्रीगुणचन्द्रगणि (देवभद्राचार्य) ने महावीरचरियं प्राकृत (रचना संवत् ११३९) में प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रशस्ति देते हुए लिखा है कि जिनेश्वरसूरि के बन्धु और गुरु भ्राता बुद्धिसागरसूरि ने व्याकरण और नवीन छन्दशास्त्र का निर्माण किया था[१] ।

अन्नो य पुन्निमायंदसुंदरो बुद्धिसागरो सूरी ।
निम्मवियपवरवागरणछन्दसत्थो पसत्थमई ॥५३॥

व्याकरण, पञ्चग्रन्थी और बुद्धिसागर के नाम से प्रसिद्ध है । छन्दशास्त्र प्राप्त नहीं होता है । सम्भवत है किसी भण्डार में उपेक्षित पड़ा हो । सम्भवतः बुद्धिसागरसूरि ने संस्कृत में पिङ्गलछन्दसूत्र के आधार पर ही छन्दशास्त्र लिखा हो और जिसमें मातृका, वर्णिक, अर्द्धसम, विषम और प्रस्तार आदि का वर्णन हो । उस अवस्था में जिनेश्वराचार्य ने प्राकृत आगम साहित्य का अध्ययन करने की दृष्टि से इस छन्दोनुशासन की रचना की है । जिसमें केवल गाथा और उसके अवान्तर भेद और प्रस्तार संख्या ही निहित है । वर्णिक साहित्य का इसमें उल्लेख नहीं है ।

टीकाकार

टीकाकार का नाम मुनिचन्द्रसूरि प्राप्त होता है । ये मुनिचन्द्रसूरि और सूक्ष्मार्थविचारसार प्रकरण के चूर्णिकार श्रीमुनिचन्द्रसूरि एक ही हों, ऐसा प्रतीत

१. गुणचन्द्र गणि (देवभद्रसूरि) रचित महावीर चरित्र, पत्र ३४०; प्रकाशन देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार संस्थान, सूरत, संवत् १९८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है । श्रीमुनिचन्द्रसूरि बृहद्गच्छीय सर्वदेवसूरि के प्रशिष्य और श्री यशोभद्रसूरि के शिष्य थे । आपको सम्भवतः श्रीनेमिचन्द्रसूरि ने आचार्य पद प्रदान किया था । आपके विद्यागुरु पाठक विनयचन्द्र थे । आप न केवल असाधारण विद्वान तथा वादीभपंचानन थे, अपितु अत्युग्र तपस्वी और बालब्रह्मचारी भी थे । आप केवल सौवीर (कांजी) ही ग्रहण करते थे, इसी कारण से आप 'सौवीरपायी' के नाम से प्रसिद्ध हुए । आपके अनुशासन में ५०० साधु और साध्वियों का समुदाय निवास करता था । तत्समय के प्रसिद्ध वादीकण्ठकुद्दाल आचार्य वादी देवसूरि जैसे विद्वान् के गुरु होने का आपको सौभाग्य प्राप्त था । गुर्जर, लाट, नागपुर इत्यादि आपकी विहारभूमि थी । ग्रन्थ रचनाओं में प्राप्त उल्लेखों को देखते हुए आपका पाटण में अधिक निवास हुआ प्रतीत होता है । आपका स्वर्गवास सं० ११७८ में हुआ है ।

आप तत्समय के प्रसिद्ध और समर्थ टीकाकार तथा प्रकरणकार हैं। आपके प्रणीत टीका-ग्रन्थों की तालिका इस प्रकार है :

१.	देवेन्द्र-नरकेन्द्र-प्रकरण वृत्ति	सं० ११६८ पाटण	चक्रेश्वराचार्य संशो.
२.	सूक्ष्मार्थविचारसार प्र० चूर्णी	सं० ११७० आमलपुर	शि. रामचन्द्र सहायता से
३.	अनेकान्तजयपताकावृत्त्युपरि टिप्पन	सं० ११७१	
४.	उपदेशपद टीका	सं० ११७४	(नागौर में प्रारम्भ और पाटण में समाप्त)
५.	ललितविस्तरापञ्जिका		
६.	धर्मबिन्दु वृत्ति		
७.	कर्मप्रकृति टिप्पन		

प्रकरणों की तालिका निम्न प्रकार है :

१.	अंगुल सप्तति	१०.	मोक्षोपदेश पञ्चाशिका
२.	आवश्यक सप्तति	११.	रत्नत्रय कुलक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. वनस्पति सप्तति
४. गाथाकोष
५. अनुशासनाङ्कांकुशकुलक
६. उपदेशामृतकुलक
७. उपदेश पञ्चाशिका
८. धर्मोपदेश कुलक
९. प्राभातिक स्तुति
१२. शोकहरोपदेशकुलक
१३. सम्यक्त्वोत्पादविधि
१४. सामान्यगुणोपदेशकुलक
१५. हितोपदेश कुलक
१६. कालशतक
१७. मण्डलविचार कुलक
१८. द्वादशवर्ग

आपने नैषधकाव्य पर भी १२००० श्लोक प्रमाणोपेत टीका की रचना की थी किन्तु दुर्भाग्यवश आज वह प्राप्त नहीं है ।

वर्ण्य विषय

प्रथम पद्य में गाथा छन्द के लक्षण का वर्णन है । दूसरे पद्य में गुरु और लघु का वर्णन करते हुए दीर्घाक्षर, बिन्दुयुक्त, संयोग, विसर्ग और व्यञ्जन आदि का उल्लेख किया गया है । तीसरे पद्य में चतुष्कल (चार मात्राएं) के प्रस्तार का वर्णन किया गया है । चौथे पद्य में उनके अपवाद का भी वर्णन किया गया है । पांचवें, छठ्ठे एवं सातवें पद्य में गाथा के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ चरण में कितनी मात्राएं होती हैं, उसका विवेचन है । आठवें पद्य में गाथा के अतिरिक्त अन्य छन्दों का वर्णन किया गया है । नवमें, दशमें एवं ग्यारहवें पद्य में विपुला, चपला, मुखचपला, जघनचपला के लक्षण प्रतिपादित किये गए हैं । उसके पश्चात् गाथा १३ से १९ तक में गाथा/आर्या के अतिरिक्त विगाथा/उद्गीति, उद्गाथा/उद्गीति, गाहिनी, स्कन्धक आदि के लक्षण देकर लघु और दीर्घ कितने होते हैं, इनकी संख्या बतलाई है । तत्पश्चात् उन-उन छन्दों के प्रस्तारों की संख्या प्रतिपादित की गई है । २३वें पद्य में ग्रन्थकार ने अपना नाम जिनेश्वरसूरि देकर इस ग्रन्थ को पूर्ण किया है ।

इसकी मूल भाषा प्राकृत है । कुल २३ गाथाएँ हैं । इस पर श्रीमुनिचन्द्रसूरि ने श्रीअजित श्रावक का उत्साह देखकर इस ग्रन्थ की टीका की रचना की । टीका की रचना संस्कृत में है । आगमों में प्रयुक्त छन्दों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का ज्ञान और विवेचन करने के लिए यह छन्दोनुशासन ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है ।

★

श्रीजिनेश्वराचार्यविरचितं श्रीमुनिचन्द्रसूरि प्रणीत व्याख्योपेतम्

छन्दोनुशासनम्

ॐ नमः सर्वज्ञाय ।

नत्वा सर्वसमीचीनं वाचागोचरवाजिनम् ।
जिनं जैनेश्वरं छन्दो विवृणोमि यथामति ॥१॥

इहाचार्यः कलुषकालप्रतापलुप्ताद्भुतद्भुतमतिविभवान् अत एव बहुबुद्धिबोध्यपिङ्गलादिप्रणीतछन्दोविचित्तिशास्त्रावधारणाप्रवणान्तःकरणान् भूयसोऽद्यतनजनाननुग्रहीतुं गाथाछन्दस्य प्रायः सकलबालाबलादिजनवचनव्यवहारगोचरतया बहूपयोगीत्यवेत्य तदेव संक्षेपतो वक्तुकामो मङ्गलाभिधेयाभिधायिकामिमामादावेव गाथामाह-

नमिऊण छन्दलक्खणधेणुं सव्वन्नुणो वरं वाणिं ।
गाहाछन्दं वोच्छं लक्खणलक्खेहिं संजुत्तं ॥१॥

इह विघ्नोपशमननिबन्धनतया शिष्टसमाचारतया पूर्वार्द्धेन मङ्गलं प्रेक्षावत्प्रवृत्त्यङ्गतया चोत्तरेणाभिधेयं सम्बन्धप्रयोजने च सामर्थ्यादुक्ते इति समुदायार्थः । अवयवार्थस्तु-नत्वा-प्रणम्य, कां ? **वाणिं**-भारतिं(तीं) । किंविशिष्टां ? **छन्दोलक्खणधेणुं** छन्दसां-गाथाश्लोकवृत्तादीनां वचनरचनाविशेषाणां लक्षणं तत्स्वरूपाभिधायकं वचनं लक्ष्यते असाधारणधर्माभिधानेन विपक्षविविक्तं लक्ष्यमनेनेति कृत्वा छन्दोलक्षणं तस्य धेनुरिव-पयःप्रसविनीं गौरिव छन्दोलक्षणधेनुस्तां । एषा चाऽविशिष्टा पुरुषकर्तृकाऽकर्तृकाऽपि कस्यचिन्मतेन वाणी स्यात् तद्व्यवच्छेदार्थमाह-**सर्वज्ञस्य**-सर्वमतीतादि ज्ञातवान् जानाति ज्ञास्यति चेति सर्वज्ञस्तस्य, तत्प्रणीतामित्यर्थः । अत एव **वरां**-प्रशस्यां परां वा प्रकर्षवतीमन्यस्यास्त्वनाप्तप्रणीतत्वेन विसंवादिनीत्वस्यापि सम्भवाद् अपौरुषेयत्वेन च । वर्ण्यते-भण्यते इति वाणी, ततः पुरुषव्यापारानुगतात्मरूपत्वेन स्वलक्षणस्याप्यनुपपत्तेर्वरत्वपरत्वयोरसम्भव इति । अत्र छन्दोलक्षणधेनुमिति विशेषणेनाऽस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छन्दोलक्षणप्रकरणस्य तत्प्रस्तुतत्वेन प्रामाण्यमाह-**गाथाछन्दो वक्ष्ये** । गीयत इति गाथा वक्ष्यमाणलक्षणा तस्याश्छन्दो-रचनाविशेषो गाथाछन्दस्तद् वक्ष्ये-अभिधास्ये । किंविशिष्टमित्याह-**लक्षणलक्ष्याभ्यां,** लक्षणं-उक्तस्वरूपं लक्ष्यं च लक्षणगम्योऽर्थः, ताभ्यां युक्तं-संगतमिति । इह नत्वा वाणीमिति मङ्गलं, गाथाछन्दोभिधेयमभिधानं त्विदमेव प्रकरणमभिधाना-भिधेयलक्षणश्च सम्बन्धः प्रयोजनं च कर्तुरनन्तरं सत्त्वानुग्रहः, श्रोतुश्च प्रकरणाधिगमः, परम्परं च द्वयोरपि मुक्तिरिति गाथार्थः ॥१॥

इदानीं प्रकृतार्थोपयोगिनीं संज्ञां परिभाषां च तावदाह-

दीहक्खरं सबिंदुं संजोगविसग्गवंजणपरं वा ।
गाहादलमंतिमं च गुरुं वंकं दुमत्तं च ॥२॥

दीहत्ति । विभक्तिलोपाद् दीर्घं, न क्षरति-न चलति प्रधानत्वादक्षरं स्वरसतया विशिष्टमपि स्याद् अतो दीर्घमिति विशेषणादक्षरं, ह्रस्वपञ्चकवर्जिता शेषस्वरा, ''नित्यं सन्ध्यक्षराणि दीर्घाणी''ति वचनात् सन्ध्यक्षराणामपि दीर्घत्वाद् । **गुरु वक्रं द्विमात्रं च** भवतीति सर्वत्र सम्बन्धः । तथा **सबिन्दुं**-सानुस्वारमक्षरमिति सामान्यानुवृत्तावपि ह्रस्वमिति सर्वत्रापि क्रियते, दीर्घस्य पृथगेव गुरुत्वादिभणनेन सबिन्दुत्वादेरनुपयोगात् । तथा **संयोगविसर्गव्यञ्जनपरं वा** संयोगश्च-द्व्यादिव्यञ्जनानां मेलकः, विसर्गश्च प्रतीतो, व्यञ्जनं च ककारादि, संयोग-विसर्गव्यञ्जनानि परे यस्मात् तत्तथा । वाशब्दः समुच्चये । तथा **गाथादलमंतिमं** च । मकारोऽलाक्षणिकः । गाथोक्तरूपा तस्या दले पूर्वापररूपे तयोरन्तिमं-पर्यन्तवर्त्ति ह्रस्वमप्यक्षरं, किमित्याह **गुर्विति** । गुरुसंज्ञं वक्रं रचनायां द्विमात्रं च मात्रागणनायां परिभाव्य(व्य)ते । अत्र च प्राकृते णादोतो(ऐदौतो) विसर्गव्यञ्जन-परत्वस्य चानुपयोगे आर्याऽपि गाथासदृशी भवतीति वक्ष्यमाणत्वादायत्यामु-पयोगसम्भवेनोपन्यास इति गाथार्थः ॥२॥

साम्प्रतमविशिष्टाक्षरसंज्ञापरिभाषे अधिकृतछन्दत्रययोग्यं अथ(कल्प)-पञ्चकस्वरूपं च विभणिषुराह-

लहु य पउणेक्कमत्तं सेसं कण्या य पंच चउमत्ता ।
दो अंत मज्झ आई गुरवो चउ लहु य नायव्वा ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लर्घ्विति- लघुसंज्ञः, चकारः समुच्चये भिन्नक्रमश्च, **प्रगुणैकमात्रं** च प्रगुणं-ऋजुस्थापनायामेकमात्रं च मात्रागणनायां पश्चाद् विशेषणसमासः । किं तदित्याह-**शेष**मिति दीर्घमबिन्द्वाद्यक्षरादन्य भवतीति, **कल्पाश्च पञ्च चतुर्मात्रा** इति, कल्प्यन्ते विरच्यन्ते इति कल्पा अंशकाश्चकारः पुनरर्थे, पञ्चेति संख्यया। चतस्रो मात्रा येषु ते तथा । तानेव स्वरूपतो व्यनक्ति - **द्व्यन्तमध्यादिगुरवः चतुर्लघुश्च ज्ञातव्या** इति, द्वयोरन्ते, मध्ये आदौ च यथासम्भवं गुरुर्गुरुश्च येषां ते, तथा चत्वारो लघवो यत्र स, तथा विंभक्तिलोपश्च प्राकृतत्वात् । चकारा अनुक्तसमुच्चये ज्ञातव्या बोद्धव्या । इदमुक्तं भवति, एकस्तावद् द्विगुरुरन्यो अन्तगुरु-श्चतुर्मात्रत्व-नियमाच्चादौ द्विलघुपरो, मध्यगुरुराद्यन्तयोरेकैकलघुस्तदपर आदिगुरु-रन्तद्विलघुश्चेत्येवं चत्वारः कल्पाश्चतुर्लघुश्च पञ्चम एत एव चतुर्मात्रागाथायां प्रयुज्यन्त इति गाथार्थः । स्थापना-द्विगु० ऽ ऽ, अन्त्यगु० । । ऽ, मध्यगु० । ऽ ।, आदिगु० ऽ । ।, चतुर्लघु । । । । ॥३॥

उक्तामेव गुरुसंज्ञां क्वचिदपवदितुमाह-

भत्तीए जिणाणं कम्माइं गलंति कुगइओ नासंति ।
पउबिंदू दीहपरा लहु य कत्थइ पयंते ॥४॥

पश्च-पकारश्च उश्च-उकारो बिन्दुश्च-बिन्दुमान् तस्य केवलस्याऽसम्भवात् पउबिन्दवो गुरवोऽपि लघवो भवन्ति । किंविशिष्टा ? दीर्घात्पराः । किं सर्वत्र नेत्याह-कुत्रापि लक्ष्यानुसारेण पदान्ते, विभक्त्यन्तं पदं, तदन्त इत्यर्थः । अयं चाऽर्थः-पूर्वार्द्धेन लक्ष्यरूपतयोक्तस्तदर्थश्चाऽयं-भक्त्योचितकृत्यकरणरूपया, केषां जिनानां-अर्हतां । किमित्याह-कर्माणि गलन्ति कर्माणि-ज्ञानादीनि (ज्ञानावरणीयादीनि) । अबन्धपरिणामतया भक्तिमतामेव जीवप्रदेशेम्यः पृथग् भवन्ति । यदि कथञ्चित् कालसंहननादिबलविकलतया निखिलकर्ममलो न गलति ततः किमित्याह - कुगतयो नरक-तिर्यक्-कुमानुषत्व-कुदेवत्वलक्षणा नश्यन्ति। अपुनर्भावेन । सर्वदर्शिनामपि दर्शनपथमवतरन्तीति ॥४॥

इह गाथाया द्वे अर्द्धे, प्रथमार्द्धमितरश्च, तत् प्रथमार्द्धस्वरूपं वक्तुकाम आह-

पढमद्धे सत्त चउमत्ता होंति तह गुरू अंते ।
नो विसमे मज्झगुरू छट्ठो अयमेव चउ लहुया ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथमार्द्धे प्रतीते **सप्तेति** संख्या अंशाः गणाः कल्पा इत्यनर्थान्तरम् । किंविशिष्टाः ? **चातुर्मात्रा** उक्तरूपा भवन्ति । तथा **गुरुः** गुरुसंज्ञमक्षरमन्ते प्रथमार्द्धस्यैव भवतीति । **नो** नैव, **विषमे** - विषमसंख्यास्थाने प्रथमतृतीयादिके। **मध्यगुरुरुक्तरूपोंऽशको** भवतीति गम्यते । **षष्ठः** षष्ठस्थानवर्ती **अयमेव** मध्यगुरुरेव भवन्तीति विषमस्थापने । चतुः-मध्यगुरुकल्परहिताश्चत्वारः कल्पास्सप्तमे तद्द्वितीयचतुर्थलक्षणेन सहिता, एवं पञ्चषष्ठस्तद्विकल्पो चेति गाथार्थः ॥५॥

उक्तं प्रथमार्द्धस्वरूपं द्वितीयस्य तद्वक्तुमाह-

बीयद्धे वेस कमो छट्ठंसो नवरमेगमत्तो उ ।
अज्जा वि गाहसरिसा नवरं सा सक्कयनिबद्धा ॥६॥

द्वितीयं च तदर्द्धं च द्वितीयार्द्धं, तत्राऽविकृतगाथाया एवाऽपिशब्दः पूर्वार्द्धक्रमापेक्ष **एष** पूर्वार्द्धविषयक्रमः परपाटिः । यदुत सप्तांशाः चतुर्मात्रा इत्याद्यनन्तरोक्तविशेषमाह-प्रथमार्द्धात् द्वितीयार्द्धे अयं विशेषो यदुत षष्ठोंऽश एकमात्रस्तु एवकारार्थस्ततश्चैकत्र एव । सामान्येन यदेव गाथालक्षणमार्याया अपि तदेवेति प्रसङ्गत एव लाघवार्थमार्यालक्षणमतिदेष्टुमत्तरार्द्धमाह-**आर्याऽपि** गाथासदृशी, न केवलं गाथा गाथेव दृश्यते किन्त्वार्याऽपि सर्वलक्षणसाधर्म्यात् । यद्येवं-गाथायाः क इवाऽऽर्यायां विशेष इत्याह-नवरं केवलं सा आर्या संस्कृतनिबद्धा-संस्कृतेन भाषाविशेषरूपेण निबद्धा रचिता गाथा न तथेत्यनयोर्विशेषः ॥६॥

सामान्येन गाथालक्षणमुक्त्वा शेषविशेषेषु पदपाठविशेषमाह-

चउलघुछट्ठे बीया सत्तमपढमा उ हवइ पयपढमं ।
पुव्वद्धे पच्छद्धे पंचमठाण पढमया उ एव ॥७॥

चतुर्लघुश्चासौ षष्ठश्च तत्र **द्वितीयाल्लघोः सप्तमे** चतुर्लघावेव **प्रथमाल्लघोस्तत** आरभ्य इत्यर्थः, **भवति**-प्रवर्तते **पदपठनं**-पदस्योक्तरूपस्य पठनं भणनमित्यर्थः । **पूर्वार्द्धे पश्चार्द्धे** प्रतीतरूप एव, **पंचमठाणे** विभक्तिलोपश्च प्राग्वदविकृतत्वात् । चतुः-चतुर्लघावेव किमित्याह प्रथमकाल्लघोः पदमिति पदपठनं भवतीत्यनुवर्तते । इदमुक्तं भवति-यदा गाथायाः प्रथमार्द्धे षट्चतुर्थलघुरंशको भवति तदा द्वितीयलघोः पदप्रारम्भो, अस्मिन्नेव सप्तमे प्रथमाद्वितीये पुनरर्द्धे यदि पञ्चमश्चतुर्लघुस्तदा प्रथमादेव पदप्रवृत्तिः, शेषेषु चतुर्लघुषु पुनः सम्भवत्स्वपि न पदपाठनीया त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति गाथार्थः ॥७॥

उक्तं सामान्यतो गाथालक्षणमधुना यद्विशेषाद्यविशिष्टानामिका गाथा भवति इति गाथाष्टकेन तदाह-

सामण्णेसा गाहा विरामअंसयवसाउ भेया सिं ।
पढमंसतिए विरई दोसु वि अद्धेसु सा पत्था ॥८॥

सामान्या-अविवक्षितविशेषा **एषा**-अनन्तरोक्तलक्षणा गाथा प्रतीता; **विरामांशकवशात्**-विरामस्य-विरतेरंशकस्य च-गणस्य वशादपेक्षणाद् **भेदा**-विशेषा भवतीति गम्यते । **आसा**मिति गाथानां, सामान्यगाथाविकारेऽपि विशेषापेक्षया बहुवचनं, सामान्य-विशेषयोः कथञ्चिदभेदादिति । **प्रथमांसकत्रिके-द्वयो**रपि पूर्वापररूपयोः प्रथमगणत्रिके यस्या **विरतिः** विरामांशो न भवति **सा** एवंरूपा गाथा **पथ्या** पथ्येत्यभिधाना भवतीति गाथार्थः ॥८॥

विउलाहिजणविस्सामया गुरूणंतरे उ मज्झगुरू ।
बीउ चउत्थउ अंसउ उ सा सव्वउ चवला ॥९॥

विपुलेति, विपुलाभिधाना गाथा भवतीति गम्यते । किंविशिष्टा ? **अधिकजनविश्रामजा**ऽधिकजनो वा पूर्वोक्तगणस्याऽपेक्षया यो विश्रामो विरतिस्तस्माज्जाताधिकजनविश्रामजोक्ता विपुला गाथा । शेषेण सर्वतश्चपलामाह । **गुलंरुणाः(गुरूणंतरे)** पूर्वापरांसकचरमाद्ययोरक्षरयोरन्तरे मध्ये तुरेवकारार्थः, ततोऽन्तर एव **मध्यगुरु**र्मध्ये गुरुर्यस्य स, तथांऽशको यस्याः स्यादिति गम्यते । किंविशिष्टा ? द्वितीयश्चकारस्य लुप्तनिर्दिष्टत्वात् चतुर्थकश्चांऽशको गणः, तुः पुनरर्थे भिन्नक्रमश्च, द्वयोरप्यंशयोः स्यात्, सा पुनरेवं लक्षणा **सर्वतश्चपला** गाथाविशेषा भवतीति गाथार्थः ॥९॥

पढमे दलंमि नीसेसलक्खणं केवलं तु चपलाए ।
बीए पुण सामण्णं गाहा सा होइ मुहचवला ॥१०॥

यस्याः स्यादिति गम्यते । **प्रथमे दले** अर्धे **निःशेषं** च **लक्षणं केवलं शुद्धं**, तुरेवकारार्थः भिन्नक्रमः, **चपलाया** एव । द्वितीये का वार्त्ता ? इत्याह-द्वितीयेपुनरर्द्धे इत्यनुवर्तते, **गाथासामान्यं** सामान्यगाथालक्षणमित्यर्थः । **सा** किमित्याह-भवति **मुखचपला**-मुखचपलाभिधाना गाथा भवतीति गाथार्थः ॥१०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीयद्धे चवलालक्खणम्मि जघणचवला भवे सा उ ।
चवलव्व तिप्पयारा विरामउ होइ विउला वि ॥११॥

द्वितीयार्द्धे पश्चिमदलेऽधिकृतगाथाया एव **चपलालक्षणे** द्वितीयचतुर्थावंशकौ गुरुमध्यगौ स्वयं च मध्यगुरू यदि भवतः । एवंलक्षणं किमित्याह-**जघनचपले**ति-जघनचपलाभिधाना भवेत् स्यात् । **सा तु** सा पुनर्यथेयं सर्वतो-मुखजघनविशेषणाविव चपला तथा विपुलाऽपि स्यात् । [कथं?] इत्याह-**चपलेव त्रिप्रकारा**-त्रिभेदा विरामतः विरतिमपेक्ष्य भवति, **विपुलापि** । इदमुक्तं भवति-यस्या द्वयोरप्यर्द्धयोः प्रथमगणत्रयापेक्षया न्यूनाऽधिका वा पदविरतिः सा सर्वतो विपुला, यस्याः पुनः प्रथमार्द्धावतार्यैव विपुलालक्षणं सा मुखविपुला, पश्चिमार्द्धावतारिणि वाऽस्मिन्नेव जघनविपुलेति गाथार्थः ॥११॥

पढमद्धे छट्ठंसो होइ दुगप्पो जहेव गाहाए ।
तह बीयद्धे वि भवे सट्ठिमत्तं भणंति तं गीई ॥१२॥

तं गीतिं भणन्तीति क्रियासम्बन्धः । यस्याः किमित्याह-**प्रथमार्द्धे** प्रतीते **षष्ठोंऽशको** भवति, **द्विकल्पो**, द्विप्रकारो, **यथैव गाथायां**-यथेति दृष्टान्तार्थमेव अवधारणे, गाथायां सामान्यलक्षणायां, **तथा** तेन प्रकारेण द्वितीयार्द्धेऽपि भवेत् सा षष्ठांशो विकल्पो मध्यगुरुश्चतुर्लघुको वा तामेवंलक्षणां गाथां षष्टिमात्रां द्वयोरप्यर्द्धयोः पृथग् त्रिंशन्मात्रत्वात्, **भणन्ति**, पूर्वस्तत्र यो गीतिं गीतमार्गोपयोगिनीं विद्वांस इति गाथार्थः ॥१२॥

गाहाबीयदले जह छट्ठंसो एगमत्तो उ ।
तह पढमद्धे वि भवे तं उवगीई भणंति बुहा ॥१३॥

गाथाद्वितीयदले द्वितीयार्द्धे, **यथा** येन प्रकारेण, **षष्ठोंऽशः** कल्प **एकमात्रो** लघ्वेकमात्रेत्यर्थः, तुरवधारणार्थ**स्तथा प्रथमार्द्धेऽपि** यस्याः षष्ठ एकमात्रो भवेत्तामनन्तरोक्तलक्षणामुपगीतिं भणंति बुधाः-विद्वांस इति गाथार्थः ॥१३॥

गाहाए जत्थ पढमबीयदलाणं विवज्जासो ।
उग्गीई सा भणिया विरामअंसेहिं होइ पुव्वसमा ॥१४॥

यत्र यस्यां **गाथाया**मुक्तलक्षणायां **प्रथमद्वितीयदलयोः विपर्यासो** व्यत्ययः, प्रथमार्द्धलक्षणं सप्तांशाश्चतुर्मात्रा अन्ते च गुरुरित्यादि तत्, द्वितीयार्द्धे

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

द्वितीयार्द्धलक्षणं च षष्ठ एकलघुरित्यादि, तच्च प्रथमार्द्धे भवति **उद्गीतिः** अभिधानमिति गाथा भणिता । किंविशिष्टा ? **विरामांशैर्भवति पूर्वसमा**-यथा सामान्यगाथायां षष्ठे चतुर्लघौ द्वितीयात्, सप्तमे प्रथमात्, द्वितीयार्द्धे तु पञ्चमे प्रथमात् पदपाठः; यथा च प्रथमतृतीयपञ्चमसप्तमेषु मध्यगुरुवर्जिताः शेषाश्चत्वारो गणस्तथा अत्राऽपीति गाथार्थः ॥१४॥

गाहसमा सत्तंसा चउमत्ता तह य अट्ठमो अंतगुरु ।
पढमद्धे तत्तुल्लं बीयंपि य खंधयं तमिह बिंति बुहा ॥१५॥

स्कन्धकं तमिह ब्रुवते बुधाः । यत्र किमित्याह-**गाथासमा**-सामान्यगाथा-तुल्याः सप्तेति-सप्तसंख्या अंशगणाः-कल्पा इति अर्थान्तरं । किंरूपाः ? **चतुर्मात्रास्तथा** चेति यथा सप्तमश्चतुर्मात्राश्चकारोप्यर्थे भिन्नक्रमश्च, तथाऽष्टमे पि चतुर्मात्र एव पर**मंतगुरु**रन्ते गुरुर्यस्य स तथा । क्वेत्याह-**प्रथमार्द्धे** प्रतीत एव, न केवलं प्रथमार्द्धमेव एवंरूपं, किन्तु द्वितीयमपीत्याह **तत्तुल्यं** प्रथमार्द्धसमं **द्वितीय**मप्यर्द्धं **स्कन्धक**ाभिधानं **तच्छन्द इह** छन्दोविचारणायां **ब्रुवन्ति**-आचक्षते **बुधाः**-सुधिय इति गाथार्थः ॥१५॥

एवं सामान्यतो विशेषतश्च गाथालक्षणमभिधाय गाथायामेव परिमाणवर्ण-संख्याभेदपरिमाणं चाऽऽह-

सत्तावण्णा मत्ता गाहा तीसइ जाव पणपण्णा ।
वण्णा एक्कगवुड्ढा हवंति छव्वीसइं ठाणा ॥१६॥

सप्तपञ्चाशन्मात्रा यस्यां सा तथा **गाथा** भवतीति गम्यते । सप्त-पञ्चाशता मात्राभिः सामान्यतो गाथा निगद्यते इत्यर्थः । **त्रिंशतो** वर्णेभ्यश्चाऽऽरभ्य **यावत् पञ्चपञ्चाशत्** पञ्चभिरधिका पञ्चाशद् यावत् । किमित्याह-**वर्णा** अकारादयः । किंरूपाः ? **एकैकवृद्धा** एकोत्तरया वृद्ध्या वृद्धिमुपगता **भवन्ति**-वर्तते । कियय(संख्यया) इत्याह-षड्विंशतिस्थानाः-षड्भिरधिका विंशतिः स्थानानि संख्याभेदा येषां ते तथा । इदमुक्तं भवति-यदा द्वयोः सर्वेऽपि गुरवो वर्णाः प्रयुज्यन्ते तदाऽपि प्रथमार्द्धे षष्ठस्य मध्यगुरुत्वेन, तल्लघुद्वयसम्भवात् । द्वितीयार्द्धे च षष्ठस्य एकलघुमात्रत्वात् त्रयो लघुवर्णा गुरुवश्च सप्तविंशतिवर्णाः, एवं जघन्यतः त्रिंशद्वर्णाः, प्रतिगुरुमात्राद्वयभावेन चतुःपञ्चाशति मात्रासु लघुमात्रा-त्रयमीलने सप्तपञ्चाशन्मात्रा गाथायां भवन्ति । षड्विंशतौ गुरुषु पञ्चसु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लघुष्वेकत्रिंशद्वर्णा एवमेकैकस्य हान्या लघुद्वयस्य च वृद्ध्या द्वात्रिंशदादयो यावदर्द्धद्वयान्तिमयोर्द्वयोः गुरुवर्णयोस्त्रिपञ्चाशति च लघुषु पञ्चपञ्चाशत् । गाथायामुत्कृष्टतो वर्णाः षड्विंशतिश्च वर्णस्थानानि सप्तपञ्चाशत्वमात्रा सर्वत्र भवतीति गाथार्थः ॥१६॥

लघुभ्य उक्तवर्णस्थाना वर्णस्थानेभ्यश्च लघुवर्णानामानयनाय करणमाह-

तियहीणलहूणऽद्धं तीसजुयं होइ वण्णपरिमाणं ।
तीसाहियं ति दुगुणं तिज्जुय लहुयक्खरपमाणं ॥१७॥

त्रिकेण हीनास्ते च ते लघवश्च **त्रिकहीना लघवस्तेषामर्द्धं** दलं, किमित्याह-**भवति**-वर्तते **वर्णपरिमाणं** वर्णसंख्या । किंविशिष्टं ? **त्रिंशद्न्यूनं**-(?**युतं**) त्रिंशता समेतं । किमुक्तं भवति ? सर्वजघन्येनाऽपि गाथायां त्रयो लघवस्तेषु चाऽपनीतेषु अनवशिष्टत्वेन दलाभावस्तत्र च शून्यस्थाने त्रिंशन्निक्षिप्यते । एवं त्रिषु लघुषु त एव त्रिंशद्वर्णाश्चत्वारश्च लघवो न सम्भवत्येव, त्रिकहीनेष्ववशिष्टद्वयस्यार्द्धे एकत्रिंशद्योगे एकत्रिंशद्वर्णा । एवं सप्तसु लघुषु द्वात्रिंशत्, नवसु त्रयस्त्रिंशतौ त्रिंशन्मीलने गाथायामुत्कृष्टतः पञ्चपञ्चाशद्वर्णास्त्रिंशदधिकामङ्कत्रिंशदादिषु वर्णस्थानेष्वेकद्व्यादिपञ्चविंशतिपर्यन्तवर्णपरिमाणं, तु विशेषणार्थो भिन्नक्रमश्च योक्ष्यते । किंविशिष्टं ? **द्विगुणं**-द्वियुतं । किं भवतीत्याह-**लहुयक्खरपमाणं**, पुनरिदमुक्तं भवति । लघ्वक्षरपरिमाणं पुनरित्थं-त्रिंशतो वर्णेभ्यो यदधिकमक्षरपरिमाणं, यथैकत्रिंशतिवर्णेष्वेको वर्ण स द्विगुणो द्वौ त्रिभिर्योगे पञ्चलघून्यक्षराणि यद्विंशतिश्च गुरूणि, एवं यावत् पञ्चपञ्चाशतिवर्णेषु त्रिंशतो अधिकायां पञ्चविंशतौ द्विगुणायां पञ्चाशति त्रिभिर्योगे त्रिपञ्चाशल्लघूनि द्वे च गुरुणी अक्षरे भवत इति गाथार्थः ॥१७॥

उक्तं लघुवर्णेभ्यः सामान्यतो वर्णपरिमाणं-वर्णेभ्यश्च लघ्वक्षरपरिमाणं । साम्प्रतं मात्राभ्यां गुरुवर्णानां सामान्यवर्णानां पुनरपि भंग्यन्तरेण गुरुवर्णानां च प्रमाणानयनायकरणमाह-

मत्ता अक्खररहिया गुरवो चत्ता य हुंति गुरुहीणा ।
लहुयक्खरेहिं हीणा सेसद्धे होंति गुरुवण्णा ॥१८॥

मात्राः सामान्यतो गाथायां किल सप्तपञ्चाशत् । किमित्याह-**गुरवो**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुवर्णपरिमाणा भवन्ति । किंविशिष्टा ? **अक्षररहिता** अक्षरैर्वर्णैं रहिता, गाथायां यावन्तो वर्णास्तै रहिता, यथोत्कर्षतो गाथायां पञ्चपञ्चाशतिवर्णेषु सप्तपञ्चाशतो मात्रापरिमाणादपनीतेष्ववशिष्टे जघन्यतो द्वे गुरुणी अक्षरे भवतः । यदा वर्ण एव मात्राः सप्तपञ्चाशत्परिमाणा गुरुहीना गुर्वक्षरप्रमाणहीनाः क्रियन्ते तदा वर्णवन्न परिमाणं न भवन्ति । चकारः समुच्चये । यथा क्वचित् गाथायां सप्तविंशति-गुरवस्तेषु च सप्तपञ्चाशतोऽपनीतेषु शेषाः त्रिंशत्, तावन्तश्च तत्र वर्णा इति । **लघ्वक्षरैः** लघुवर्णैः **हीना** मात्रा इत्यनुवर्तते । ततश्च लघ्वक्षरापनयने यच्छेषमवशिष्टं मात्रापरिमाणं तदर्द्ध प्रतीत एव । किमित्याह-**गुरुवर्णा** भवन्तीति गम्यते । यथा क्वचिद् गाथायां त्रीणि लघुन्यक्षराणि मात्रापरिमाणात् तदपनयने चतुःपञ्चाशत् तस्या अप्यर्द्धे सप्तविंशतिस्तावन्तश्च गुरुवर्णाः । एवं गीत्युपगीत्योरपि स्वमात्रापरिमाणानुसारेण भावना कार्या इति गाथार्थः ॥१८॥

साम्प्रतं किञ्चित् सामान्यगाथालक्षणविलक्षणत्वेन पृथगेव स्कन्धकगाथायां मात्रापरिमाणं वर्णस्थानपरिमाणं चाऽऽह-

चउसट्ठी सत्तावण्णा चउतीसाइ जा दुसहिया सट्ठी ।
लहुयद्ध[दु]तीसजुया वण्ण खंधियए सया विण्णेया ॥१९॥

चतुःषष्टिर्मात्राः स्कन्धके स्कन्धकच्छन्दसि भवन्तीति गम्यते । अष्टानां चतुर्मात्राणां अंशकानां प्रत्येकमर्द्धद्वयेपि तावद् वर्णस्थानानि चतुस्त्रिंशदादीनि पर्यवसानमाह-यावद् द्विसहिता षष्टिपर्यन्तानीत्यर्थः । यतोऽत्रोत्कृष्टतस्त्रिंशत् गुरूणि तेषु चाऽर्द्धद्वयेऽपि षष्ठस्य पृथग् गुरुमध्यतो लघुचतुष्टयसम्भवात् । जघन्य-तश्चतुस्त्रिंशत्वर्णा एकमेकैकगुरुवर्णहानौ लघुद्वयवृद्धौ च, यावद् द्वाषष्टौ वर्णेषु द्वौ गुरू षष्ठिश्च लघव इत्येकोनत्रिंशद्बलस्थानानि, चतुस्त्रिंशतो द्वाषष्टिस्थाने, एतत् संख्यापूरणे । **लघ्वर्द्धा** लघ्वर्द्धपरिमाणा **द्वात्रिंशद्युता वर्णाः स्कन्धके सदा** स्कन्धकलक्षणस्याऽविसम्वादित्वात् अविचलत्वेन सर्वकालं विज्ञेया ज्ञातव्याः । इदमुक्तं भवति-लघुभ्यो वर्णपरिमाणोन्नयने इदं करणं यावन्ति लघून्यक्षराणि तत्र दृश्यन्ते तेषामर्द्धं द्वात्रिंशद्युतं वर्णपरिमाणं । यथोत्कर्षतः षष्टिप्रमाणेषु । लघुष्वर्द्धीकृतेषु त्रिंशति द्वाविंशति क्षेपे च द्वाषष्टिवर्णा भवन्तीति गाथार्थः ॥१९॥

इदानीमंशकविकल्पवशात् गाथोद्गीतिस्कन्धकगीत्युपगीतिचपलानां प्रत्येक, प्रस्तारप्रमाणं विवक्षुः गाथात्रयमाह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरस अंस वियप्पा जहसंभवमिह परोप्परं गुणिया ।
वीससहस्सा एगूण वीसलक्खद्धकोडीउ ॥२०॥

इह गोथोद्गीत्योः **त्रयोदश अंशका**श्चतुर्मात्रास्तत्र गाथायां प्रथमार्द्धे सप्त द्वितीयार्द्धे तु षष्टिपर्यायेण चोद्गीतौ तत्र प्रथमतृतीये पञ्चमसप्तमाः प्रथमार्द्धे मध्यगुरुकल्परहिताः प्रत्येकं चतुर्विकल्पाः । द्वितीयार्द्धेऽपि एवमेव । इत्येवमेतौ द्वितीय-चतुर्थौ चाऽर्द्धद्वयेऽपि प्रत्येकं पञ्च विकल्पा चैवमेते सर्वे चत्वारः षष्ठाङ्कश्च गाथायां प्रथमे अर्द्धे उद्गीतौ च द्वितीये द्वे विकल्पाः, ततो अष्टौ चतुष्काः, चत्वारः पञ्च द्विकं चेति । तत्र चतुष्टाङ्कस्य परस्परगुणने पञ्चषष्टिसहस्राणि पञ्चशतानि षट्त्रिंशच्च, पञ्चकचतुष्कस्य तु षट्शतानि पञ्चविंशत्यधिकानि परस्परगुणने भवन्ति । ततोऽनेन राशिना पूर्वस्मिन्नसौ गुणितो अन्यतरार्द्धे षष्ठांशस्य द्विविकल्पत्वेन पुनरपि द्विगुणित इदं प्रस्तारप्रमाणं भवति । यथा विंशतिसहस्राणि एकोनविंशतिर्लक्षा अष्टो कोटय इति, अत एवाह-

पत्थारमाणमेयं गाहुग्गीईण खंधएट्ठगुणं ।
दुगुणं दुगुणं गीईए अद्धयं होई ॥२१॥

प्रस्तारमानं रचनापरिमाणमेतदनन्तरोक्तमङ्कतोपि ८,१९,२०,००० कयोरित्याह-गाथोद्गीत्योः स्कन्धकेऽष्टगुणं प्रस्तारमानमेतदिति वर्तते । यतोऽत्र द्वितीयार्द्धेपि षष्ठोंऽशो द्विविकल्पो दलद्वये अष्टमौ च, एवं च ये द्विकास्ते च परस्परगुणिता अष्टावेतद्गुणश्च पूर्वराशिः स्कन्धकप्रमाणं भवति । तच्चैतत् षष्टिसहस्राणि त्रिपञ्चाशल्लक्षाः पञ्चषष्टिकोटय इति । अङ्कतोऽपि ६५,५३,६०,००० । यथोक्तम्-

पणसट्ठीकोडीउ लक्खा तेवण्ण सट्ठिसहस्साइं ।
पत्थारमाणमेयं खंधयगाहाए बिंति मुणी ॥

द्विगुणं गीत्यां सामान्यगाथाप्रस्तारप्रमाणं । द्वितीयार्द्धेपि षष्ठांशकस्य द्विविकल्पकत्वात् । तच्चेदं-चत्वारिंशत्सहस्राः अष्टात्रिंशल्लक्षाः षोडशकोटयो अङ्कतोऽपि १६,३८,४०,००० । एतदेव चोक्तसन्नीत्यामर्द्धकमर्द्धरूपं भवति । अत्र प्रथमार्द्धेपि षष्ठांशस्यैव मात्रत्वात् । तच्च षष्टिसहस्राः नवलक्षाः चतस्रः कोटयः इति अङ्कतोऽपि ४,०९,६०,००० । इति गाथाद्वयार्थः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोलक्खऽडयालीससया मुहजघणचवलाण पत्तेयं ।
पंचसयबारसोत्तरपत्थारो उभयचवलाए ॥२२॥

द्वे लक्षे अष्टचत्वारिंशच्च सहस्राणि मुखजघनचपलयोः, चपलाशब्दस्य प्रत्येकभिसम्बन्धात् मुखचपला-जघनचपलायाश्च **प्रत्येक**मिति पृथक् प्रस्तार इति सम्बध्यते । अत्र हि मुखचपलायां द्वितीयचतुर्थौ मध्यगुरू अविकल्पावेव, एतौ च गुरुमध्यगौ कर्त्तव्याविति । प्रथमो द्विगुरुरन्तगुरुर्वा तृतीयो द्विगुरुरेव तद्भावे हि तस्य द्वितीयचतुर्थयोः गुरुमध्यगत्वं । पञ्चमोऽप्यादिगुरुत्वेन द्विगुरुत्वेन वा द्विविकल्पः, षष्ठः प्रतीत एव, सप्तमोऽपि चतुर्विकल्प इति त्रयाणां द्विकानां चतुष्कस्य च परस्परगुणने याता द्वात्रिंशद्विकल्पास्ततो द्वात्रिंशता सामान्यगाथा-पश्चिमार्द्धविकल्पानां चतुःषष्ट्यंशप्रमाणानां गुणने यथोक्तं प्रस्तारप्रमाणं मुखचपलाया भवति । एतदेव द्वितीयार्द्धवतारिणि चपलालक्षणे षष्ठस्यैकमात्रत्वादविकल्पकत्वे द्वयोर्द्विकयोश्चतुष्केन गुणने यातैः षोडशभिर्विकल्पैर्विशेषगाथाप्रथमार्द्धे विकल्पानां अष्टशताधिकद्वादशसहस्रप्रमाणानां गुणने जघनचपलायाः प्रस्तारप्रमाणं भवति **पञ्चशतानि द्वादशोत्तराणि** ५१२ । विभक्तिलोपः प्राकृतत्वात् **प्रस्तारः**-प्रस्तारप्रमाणं कस्या इत्याह-**उभयचपलायाः** सर्वतश्चपलाया इत्यर्थः । उभयार्द्धवतारिणि हि चपलालक्षणे प्रथमार्द्धे द्वात्रिंशदुत्तरार्द्धे च षोडशविकल्पा, द्वात्रिंशतः षोडशभिर्गुणने यथोक्तं प्रमाणं भवतीति गाथार्थः ॥२२॥

अधुना प्रकरणमुपसंहरन् तस्य प्रयोजनं विशेषो(षं) प्रयोगं कर्त्तारं च वक्तुकाम आह-

गाहाजाइसमासो छन्दोजइगुरुलहूण छेयत्थं ।
पाइयसत्थवत्थुवओगी जिणेसरसूरिणा रइओ ॥२३॥

गाथाजातीनां पथ्या-विपुला-चपलादीनां **समासः**-संक्षेपो **गाथाजाति-समासः** तत्प्रतिपादकत्वात् प्रकरणमपि तथोच्यते इति । **जिनेश्वरसूरिणा रचित** इति सम्बध्यते । किमर्थमित्याह-**छन्दोयतिगुरुलघूनां छेदार्थं**, छेदः - परिच्छेदः परिज्ञानमिति यावत् । केषां ? छन्दोयतिगुरुलघूनां छन्दश्च गाथाछन्द एवं सामान्यतो विशेषश्च तत्रैव विरामो लघुश्च-लघ्वक्षरं गुरुश्च-गुर्व्वक्षरमेव, ततस्तेषामयं विरामस्तस्य यथा परिच्छेदो भवति तथा दर्शितमेव । प्राकृतं च-तत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृतभाषानिबन्धनत्वात् शास्त्रं च-प्रतिविशिष्टार्थशासनात् प्रतीतमेव । प्राकृतशास्त्रे उपयोगो-व्यापारः सो अस्यास्तीति उपयोगी प्राकृतशास्त्रे उपयोगी **प्राकृत-शास्त्रोपयोगी**। तुः पूरणार्थो । जिनेश्वरसूरिणेति कर्तुर्नामनिर्देशो रचितः- कृत इति गाथार्थः ॥२३॥

अजितश्रावकोत्साहादेतच्छन्दोनुशासनम् ।

व्यावृणो**न्मुनिचन्द्राख्य-सूरिः** श्वेताम्बरप्रभुः ।

इति श्रीजिनेश्वराचार्यविरचित-छन्दोनुशासनविवरणं समाप्तम् ।

कृतिः श्रीमुनिचन्द्रसूरीणाम् ।

प्रत्यक्षरगणनया श्लोकमानं २४३ ।

[राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, जेसलमेर ग्रन्थोद्धार योजना फोटोकॉपी नं. २३१, प्लेट ७ पत्र १३] ताडपत्रीय प्रति-लेखनकाल १२वीं.

C/o. प्राकृत भारती अकादमी
13-A. मेन मालवीय नगर,
जयपुर ३०१०१७

[नोंध : सम्पादक महोदयने 'छन्दोनुशासन' का मेटर जैसा भेजा वैसा कम्पोझ हुआ । प्रूफ-वाचन के दौरान काफी क्षतियां नजर में आई, जो बहुतायत लेखनदोष के वजहसे हुई मालूम पडी, और जिनको सुधारने के लिए मूल हस्तप्रति का होना अनिवार्य है, अतः हमने हमारी अल्पमति के अनुसार जितना खयाल आया, वैसा सुधारा है । शुद्धप्राय वाचना की प्रतीक्षा करेंगे ।

— **शी.**]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमुनिसोमगणिरचित

कल्पसूत्र लेखन-प्रशस्ति

म. विनयसागर

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समुदाय में कल्पसूत्र का अत्यधिक महत्त्व है। पर्वाधिराज पर्युषणा पर्व में नौ वाचनागर्भित कल्पसूत्र का पारायण किया जाता है और संवत्सरी के दिवस मूल पाठ (बारसा सूत्र) का वाचन किया जाता है। प्रत्येक भण्डारो में इसकी अनेकों प्रतियाँ प्राप्त होती हैं। अनेक ज्ञान भण्डारों में तो सोने की स्याही, चाँदी की स्याही और गंगा-जमुनी स्याही से लिखित सचित्र प्रतियाँ भी शताधिक प्रतियाँ प्राप्त होती हैं। केवल स्याही में लिखित प्रतियाँ तो हजारों की संख्या में प्राप्त हैं।

पन्द्रहवी शती के धुरन्धर आचार्य श्री जिनभद्रसूरिने समय की मांग को देखते हुए अनेक जिन मन्दिरों, हजारों जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठाएं की और साहित्य के संरक्षण की दृष्टि से खम्भात, पाटण, माण्डवगढ, देवगिरि, जैसलमेर आदि भण्डार भी स्थापित किए। लेखन प्रशस्तियों से प्रमाणित है कि आचार्यश्री ने न केवल ताड़पत्र और कागज पर प्रतिलिपियाँ ही करवाई थी अपितु अपने मुनि-मण्डल के साथ बैठकर उनका संशोधन भी करते थे। जैसलमेर का ज्ञान भण्डार उनके कार्य-कलापों और अक्षुण्ण कीर्ति को रखने में सक्षम है। जहाँ अनेकों जैनाचार्य, अनेकों विद्वान् और अनेकों बाहर के विद्वानों ने आकर यहाँ के भण्डार का उपयोग किया है। इन्हीं के सदुपदेश से विक्रम संवत् १५०९ में रांका गोत्रीय श्रेष्ठी नरसिंह के पुत्र हरिराज ने स्वर्ण स्याही में (सचित्र) कल्पसूत्र का लेखन करवाया था। इसकी लेखन प्रशस्ति पण्डित मुनिसोमगणि ने लिखी थी। प्रशस्ति ३६ पद्यों में है। इस प्रशस्ति में प्रति लिखाने वाले श्रावक का वंशवृक्ष और उपदेश देने वाले आचार्यों की पट्ट-परम्परा भी दी गई है।

श्री जिनदत्तसूरिजी ने उपकेशवंश में रांका गोत्र की स्थापना की थी। इसी कुल के पूर्व पुरुष जोषदेव हुए, जिन्होंने कि मदन के साथ सपादलक्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देश और उकेशपुर (ओसियां) में सुकृत कार्य किए थे । उन्हीं की वंश परम्परा में श्रेष्ठी गजु हुए और उनके पुत्र गणदेव हुआ । गणदेव का पुत्र धांधल हुआ । जो की मम्मण कहलाता था और जिसने मुमुक्षु बनकर पद्मकीर्ति नाम धारण किया था ।

श्रेष्ठी आंबा, जींदा और मूलराज ये चाचा के पुत्र थे और जिन्होंने जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाकर शासनोन्नति का कार्य किया था । उन्होंने ही फुरमान प्राप्त करके संवत् १४३६ में शत्रुंजय आदि तीर्थों का श्री जिनराजसूरि के सान्निध्य में संघ निकाला था । इस संघ में ५०,००० रूपये व्यय हुए थे । धांधल की भार्या का नाम श्री था । उसके दो पुत्र थे- जयसिंह और नृसिंह ।

श्रेष्ठी मोहन के दो पुत्र थे- कीहट और धन्यक । इन्होंने भी शत्रुंजय का संघ निकालकर संघपति पद प्राप्त किया था । इन्होंने ने ही जेसलमेर में अपने बन्धुओं के साथ संवत् १४७३ में जिनमन्दिर और प्रचुर प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाई थी । जयसिंह के दो पत्नियाँ थी - सिरू (सरस्वती),....। सरस्वती के दो पुत्र थे - रूपा और थिल्ला । रूप की पत्नी का नाम मेलू और चिपी था । उनका पुत्र नाथू था । नाथू के दो पुत्र राजा और समर थे। थिल्ला के दो पुत्र थे- हरिपाल और हरिश्चन्द्र । हरिपाल के दो पुत्र थे- हर्ष और जिनदत्त । हरिश्चन्द्र का पुत्र था उदयसिंह ।

श्रेष्ठी नरसिंह की भार्या का नाम धीरिणि था । उनके दो पुत्र हुए- भोजा और हरिराज । भोजा की पत्नी का नाम भावल देवी और उसका पुत्र गोधा था । उसके दो पुत्र थे- हीरा और धन्ना ।

श्रेष्ठी नृसिंह का द्वितीय पुत्र हरिराज छत्रधारी था । देवगुरु अरिहंत धर्म का उपासक था और स्वपक्ष का पोषण करने वाला था । हरिराज की दो पत्नियाँ थी- राजू और मेघाई ।

इधर पारख वंशीय कर्ण की प्रिया का नाम कर्णादे था । उसके चार पुत्र हुए- नरसिंह, महीपति, वीरम और सोमदत्त । चार पुत्रियाँ थी । जिसमें तीसरी पुत्री का नाम मेघाई था । जिसका विवाह हरिराज के साथ हुआ था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिराज के तीन पुत्र थे- जीवा, जिणदास और जगमाल। एक पुत्री थी जिसका नाम मणकाई था। जीवराज की पत्नी का नाम कुतिगदेवी था। जिणदास की प्रिया का नाम जसमादे था।

नरसिंह के तीन पुत्र थे- सहसकिरण, सूरा और महीपति। सहसकिरण के दो पुत्र थे- अद्दा और सद्दा। महीपति का पुत्र वच्छराज था। हरिराज का धर्मपुत्र सुभाग था।

धर्मवान हरिराज अपने परिवार सहित तीर्थयात्रा, संघपूजा, जैन धर्म की प्रभावना करता हुआ शोभायमान है।

इधर भगवान महावीर स्वामी के पंचम गणधर पट्टधर सुधर्मा स्वामी हुए और उन्हीं की वंश परम्परा में हरिभद्रसूरि आदि प्रभाविक आचार्य हुए। शासन का उद्योत करने वाले उद्योतनसूरि के शिष्य वर्द्धमानसूरि हुए। इनके शिष्य जिनेश्वरसूरि ने पत्तन नगर में दुर्लभराज की राज्य सभा में खरतर विरुद प्राप्त किया था। उनके पट्टधर जिनचन्द्रसूरि हुए तत्पश्चात् नवाङ्गी वृत्तिकार श्री अभयदेवसूरि हुए। उनके शिष्य सूरिशिरोमणी जिनवल्लभसूरि हुए। तदनन्तर युगप्रधान पदधारक जिनदत्तसूरि हुए। तत्पश्चात् परम्परा में श्रीजिनचन्द्रसूरि, श्रीजिनपतिसूरि, श्रीजिनेश्वरसूरि, श्रीजिनप्रबोधसूरि, श्रीजिनचन्द्रसूरि, श्रीजिनकुशलसूरि, श्रीजिनपद्मसूरि, श्रीजिनलब्धिसूरि, श्रीजिनचन्द्रसूरि, श्रीजिनोदयसूरि और जिनराजसूरि हुए। इनके पट्टधर पूर्णिमा चन्द्र के समान, सूर्य की किरणों को धारण करनेवाले श्रीजिनभद्रसूरि है। उन्हीं के उपदेश से हरिराज ने स्वर्ण स्याही में यह कल्पसूत्र सन् १५०९ में लिखवाया और इसकी प्रशस्ति मुनिसोमगणि ने लिखी है।

इस प्रशस्ति का महत्त्व इसीलिए भी बढ़ जाता है कि जैसलमेर में जिसको लक्ष्मणविहार कहा जाता है, जिसके दूसरे शिलालेख की प्रशस्ति उपाध्याय जयसागर ने लिखी है। तदनुसार रांका गोत्र में जोषदे और आसदेव की परम्परा में धांधल हुए। इस प्रशस्ति में इस परम्परा के प्रतिष्ठित महनीय सभी श्रेष्ठियों के नाम और उनके पुत्रों का उल्लेख है। ये नरसिंह मम्माणी कहलाते और उनके पुत्र जयसिंह के पुत्र भोज और हरिराज ने इस जेसलमेर तीर्थ पर लक्ष्मण विहार में संवत् १४७३ में श्री जिनवर्द्धनसूरि के सान्निध्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में अपने परिवार सहित यह प्रतिष्ठा महोत्सव आयोजित किया था। (जैसलमेर का यह शिलालेख मेरे द्वारा सम्पादित **प्रतिष्ठा लेख संग्रह,** लेखांक १४७, पृष्ठ ३४ देखें।)

इसी प्रकार इसी हरिराज द्वारा प्रतिष्ठित अन्य मूर्तियाँ भी प्राप्त हैं, जो निम्न हैं :-

(२४१) आदिनाथ-पञ्चतीर्थी:

९०।सं० १४९३ वर्षे फाल्गुन वदि १ बुधे ऊकेशवंशे श्रेष्ठि गोत्रे श्रे० मम्मणसंताने श्रे० नरसिंह भार्या धीरिणि:। तयो: पुत्र भोजा हरिराज सहसकरण सूरा महीपति पौत्र गोधा इत्यादि कुटुम्बं॥ तत्र श्रे० हरिराजेन आत्मनस्तथा भार्या मेघु श्राविकाया: पुत्री कामण काई-प्रभृतिसंततिसहिताया स्वश्रेयसे श्रीआदिनाथबिम्बं कारितं खरतरगच्छे श्रीजिनभद्रसूरिभि: प्रतिष्ठितम्॥

(७४३) आदिनाथ-पञ्चतीर्थी:

संवत् १५२८ वर्षे आषाढ़ २ दिने ऊकेशवंशे रांकागोत्रे श्रे० नरसिंह भा० धीरणि पुत्र श्रे० हरिराजेन भा० मघाई पु० श्रे० जीवा श्रे० जिणदास श्रे० जगमाल श्रे० जयवंत पुत्री सा० माणकाई प्रमुख परिवारयुतेन श्री आदिनाथबिम्बं पुण्यार्थं कारयामासे प्रतिष्ठितं श्रीखरतरगच्छे श्रीश्रीश्रीजिनभद्रसूरिपट्टे श्रीश्रीश्रीजिन-चन्द्रसूरिभि:॥

(८३६) धर्मनाथ पञ्चतीर्थी:

सं० १५३६ वर्षे फागण वदि .... दिने श्रीऊकेशवंशे रांकागोत्रे श्रे० जेसिंघपुत्र श्रे० घिल्ला भा० करणु पु० श्रे० हरिपाल भा० हासलदे पुत्र श्रे० हर्षा भ्रा० जिणदत्तेन भा० कमलादे पुत्र सधरेण सोनापालादि परिवारेण स्वपितृपुण्यार्थं श्रीधर्मनाथबिम्बं का० प्रति० श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनभद्रसूरिपट्टे श्रीजिनचन्द्रसूरिभि:॥

(८३७) नमिनाथ-पञ्चतीर्थी:

सं० १५३६ वर्षे फा० वदि ..... दिने ऊकेशवंशे रांकागोत्रे श्रे० जेसिंघपुत्र श्रे० घिल्ला भार्या करणू पु० श्रे० हरिपाल भा० हांसलदे पुत्र श्रे० हर्षा भा० ..... श्रे० जिणदत्तेन भा० कमलादे पु० सधारण- सोनापालादिपरिवारेण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वमातृपुण्यार्थं श्रीनमिनाथबिम्बं का० प्र० श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनभद्रसूरिपट्टे श्रीजि[न]चन्द्रसूरिभिः ॥

प्रतिष्ठासोमगणि

श्री जिनभद्रसूरि के शिष्यों में महोपाध्याय सिद्धान्तरुचि के शिष्य साधुसोमगणि आदि प्रसिद्ध हैं । सोमनन्दी देखकर मैंने यही सोचा कि ये भी जिनभद्रसूरि के पौत्र शिष्य होंगे । इसीलिए खरतरगच्छ साहित्य कोश, क्रमांक २२३२ और २७८० में मैंने सिद्धान्तरुचि का ही शिष्य अंकित किया है । किन्तु उपाध्याय श्री भुवनचन्द्रजी महाराज ने सितम्बर २००६ में केवल द्वितीय पत्र की फोटोकॉपी भेजी थी, जिसमें मुनिसोम की राजस्थानी भाषा में रचित लघु कृतियाँ थी । इन लघु कृतियों में एक कृति में स्पष्ट लिखा है- "कमलसंजमउवझाय सीस करइ नितु सेव... कमलसंजमउपझाय पदपंकजए कवितु मुनिमेरु इम कहइ ।" अतएव यह स्पष्ट है कि मुनिमेरु कमलसंयमोपाध्याय के शिष्य थे जिन्होंने ने कि उत्तराध्ययन सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि टीका १५४४ में की थी । हाँ, दीक्षा अवश्य ही सोमनन्दी के नाम से श्री जिनभद्रसूरि ने ही प्रदान की थी । इस सूचना के लिए मैं उपाध्याय भुवनचन्द्रजी का कृतज्ञ हूँ ।

खरतरगच्छ साहित्य कोश में मुनिसोमगणि रचित दो कृतियों का उल्लेख हुआ है । क्रमांक २२३२ पर रणसिंहनरेन्द्रकथा, रचना संवत् १५४० तथा क्रमांक २७८० पर संसारदावा पादपूर्ति स्तोत्र ।

भाषा कृतियों में उपाध्याय श्री भुवनचन्द्रजी महाराजने १६वीं शताब्दी लिखित जो द्वितीय पत्र भेजा है उसके अनुसार राजस्थानी भाषा की लघुकृतियाँ ओर हैं :-

१. ऋषभदेव फाग, मुनिमेरु / कलमसंयमोपाध्याय, भाषा-राजस्थानी, स्तवन, अपूर्ण, गा.-१७, अ. उपाध्याय भुवनचन्द्रजी, प्रतिलिपि विनय

२. भ्रमर गीत, मुनिमेरु / कलमसंयमोपाध्याय, भाषा-राजस्थानी, स्तवन, गा.-२, आदि-अंधकारुगमिले प्रगट प्रकाशे, अ. मुनिभुवनचन्द्रजी, प्रतिलिपि विनय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. विरक्ति कारण गीत, मुनिमेरु / कलमसंयमोपाध्याय, भाषा-राजस्थानी, स्तवन, गा.-७, आदि-पुनिम रजनी करु कपमाला, अ. मुनिभुवनचन्द्रजी, प्रतिलिपि विनय

४. आदिनाथ गीत, मुनिमेरु / कलमसंयमोपाध्याय, भाषा-राजस्थानी, स्तवन, गा.-२, आदि-सकल मंगल कारणऊ रे, अ. मुनिभुवनचन्द्रजी, प्रतिलिपि विनय

५. जीरावला पार्श्वनाथ गीत, मुनिमेरु / कलमसंयमोपाध्याय, भाषा-राजस्थानी, स्तवन, स्तवन, गा.-२, आदि-पहिरिवा खिणु चिरु चंदणु, अ. मुनिभुवनचन्द्रजी, प्रतिलिपि विनय

६. पार्श्वनाथ गीत, मुनिमेरु / कमलसंयमोपाध्याय, भाषा - राजस्थानी, स्तवन, गा.-२, आदि सखी से रहमुच्छले कवणु, अ. मुनिभुवनचन्द्रजी, प्रतिलिपि विनय.

७. नेमिनाथ गीत, मुनिमेरु / कमलसंयमोपाध्याय, भाषा - राजस्थानी, स्तवन, गा.-२, आदि-पमुय देखी नेमी रथ नेमी, अ. मुनिभुवनचन्द्रजी, प्रतिलिपि विनय.

८. अजितनाथ गीत, मुनिमेरु / कमलसंयमोपाध्याय, भाषा - राजस्थानी, स्तवन, गा.-२, आदि-हितु अहितु विवेक विचारी लई, अ. मुनिभुवनचन्द्रजी, प्रतिलिपि विनय.

९. वाराणसी पार्श्वनाथ गीत, मुनिमेरु / कमलसंयमोपाध्याय, भाषा - राजस्थानी, स्तवन, गा.-२, आदि-अम्ह ची शरीरी सोगुण नही रिजवी, अ. मुनिभुवनचन्द्रजी, प्रतिलिपि विनय.

१०. जिनचन्द्रसूरि गीत, मुनिमेरु / कमलसंयमोपाध्याय, भाषा - राजस्थानी, स्तवन, गा.-२, आदि-चेतना रूपु आतमा विचारी, अ. मुनिभुवनचन्द्रजी, प्रतिलिपि विनय.

लेखन प्रशस्ति का विवरण :

तीन पत्र हैं । साइज १० x ४ है । पंक्ति लगभग ८-९ है । अक्षर २८ से ३० है और स्वर्णाक्षरों में लिखित है । यह प्रति कहाँ है मुझे स्वयं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को ध्यान नहीं है । ६० वर्ष के साहित्यिक सेवा कार्य में रहते यह लेखन प्रशस्ति की प्रतिलिपि की थी । किन्तु मुझे आज स्मरण नहीं है कि यह प्रति किस भण्डार की और कहाँ पर थी । अन्वेषणीय है । जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह (सम्पादक मुनि जिनविजयजी), कैटलॉग ऑफ संस्कृत और प्राकृत मैन्युस्क्रिप्ट जैसलमेर कलेक्शन (सम्पादक पुण्यविजयजी) में इसका उल्लेख नहीं है ।

॥ र्द० ॥ अर्हम् ।

सुपर्ववेलिवर्धिष्णु - र्विश्ववंशशिरोमणिः ।
श्रीमद्गुरुगिरिस्थाणु - र्जीयादूकेशवंशराट् ॥१॥
रांकाकुले श्रेष्ठिधुराधुरन्धरो - ज्जोषदे ? श्रीजिनदत्तसूरिभिः ।
सपादलक्षैस्मदनैस्समन्वित, ऊकेशपुर्यां सुकृते नियोजितः ॥२॥
तदन्वये श्रेष्ठि गजू प्रसिद्धः, पुत्रस्तदीयो गणदे समृद्धः ।
श्रीधांधलाख्योपि ततो मुमुक्षुः श्रीपद्मकीर्त्त्या प्रवरप्रसिद्धः ॥३॥
आंबा-जींदा-मूलराजा सत् पितृव्यसहोदराः ।
अर्हत्प्रतिष्ठामुच्चाया-मत्युन्नतिमकारयन् ॥४॥
शत्रुञ्जयादौ फुरमाण शक्ते-र्निःस्वानयुक्षड्त्रिचतुर्दशाब्दे (१४३६)।
यात्रा समं श्रीजिनराजसूरे-ष्टङ्कार्धलक्षव्ययतो व्यधुर्ये ॥५॥
धांधलिर्मम्मणस्तस्य, भार्या श्रीः श्रीरिवापरा ।
जयसिंह-नृसिंहाख्यौ, क्षितौ ख्यातौ सुतौ पुनः ॥९॥

तथा-

आस्तां मोहण जन्मात्सै, श्रेष्ठि कीहट-धन्यकौ ।
शत्रुञ्जयादियात्रां या-वकार्ष्टां सङ्घपत्वतः ॥७॥
ताभ्यां बन्धुभ्यां सह जेसलमेरौ विधापिता याभ्याम् ।
जैनी महाप्रतिष्ठा त्रिसप्तभुवनैर्मिते (१४७३) वर्षे ॥८॥
अभवज्जयसिंहस्य, पत्नीयुगलमुत्तमम् ।
सिरू सरस्वतीसंज्ञं, सरस्वत्याः सुतोत्तमौ ॥९॥
रूपा-थिल्लाभिधो रूप-प्रिया मेलू-चिपीद्वयम् ।
पुत्रो नाथूः सुतो त्वस्य, राजाख्य-समराभिधौ ॥१०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थिल्लाकस्य त्वभूत्कान्ता करणूः करणापरा ।
हरिपालो हरिश्चन्द्रः, पुत्रौ पुण्यपवित्रितौ ॥११॥
हरिपालात्मजो हर्ष-जिनदत्तौ शुभाशयौ ।
यशस्व्युदयसिंहाख्यो, हरिश्चन्द्रतनूद्भवः ॥१२॥
श्रेष्ठि यो(श्रेष्ठिनो?) नरसिंहस्य, भार्ये धीरिणि सुष्मती ।
धीरिणीकुक्षिजौ भोजा-हरिराजौ प्रभावकौ ॥१३॥
भार्या भावलदेवी तु, श्रेष्ठि भोजप्रियाऽभवत् ।
सुतो गोधाभिधश्चास्य, हीरा-धन्नाख्यनन्दनौ ॥१४॥
श्रीदेवगुर्वार्हतधर्मतत्त्व-पवित्रछत्रत्रयभूषिताङ्गः ।
श्रेष्ठीनृसिंहस्य सुतो द्वितीयः, स्वपक्षपोषी हरिराजदक्षः ॥१५॥
वर्या राजूश्च मेघाई, भार्ये अभवतां पुरा ।
श्रेष्ठिनो हरिराजस्य, पुमर्थत्रयशालिनः ॥१६॥

इतश्च-

परीक्षवंशशृङ्गार-मुभयेऽस्य सुतोऽभवन् ।
सद्येशः करणस्तस्य, करणादे प्रियाऽभवत् ॥१७॥
चत्वारः तनयास्तस्य, पुमर्था इव देहिनः ।
नरसिंहो महीपत्ति-वीरमः सोमदत्तकः ॥१८॥
चतस्रश्च सुतास्तासु मेघाईति तृतीयिका ।
साध्यूढा हरिराजेन, कलालावण्यमालिनी ॥१९॥
जीवाख्यो जिणदासश्च जगमालश्च तत्सुताः ।
शुद्धशीलासदाचारा मणकाईतिनन्दिनी ॥२०॥
नाम्ना कुतिगदेवीति जीवराजस्य वल्लभा ।
वल्लभा जिणदासस्य, जसमादे यशस्विनी ॥२१॥
सुखमति-प्रसूतास्तु, नरसिंहस्य नन्दनाः ।
सहस्रकिरणः सूरा, महीपतिरिमे त्रयः ॥२२॥
सहस्रकिरणस्यास्ति, अद्दा सद्दा सुतद्वयोः ।
महीपतितनूद्भूतो, वच्छराजः कुमारकः ॥२३॥
धर्मपुत्रः सुभागाख्यो, हरिराजस्य धर्मवान् ।
इत्यादि परिवर्हेणा-गर्हेणासावलङ् कृतः ॥२४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थयात्रासु सङ्घार्चा-जैनधर्मप्रभावनाः ।
कुर्वन् विराजते श्रेष्ठी, हरिराजो निरन्तरम् ॥२५॥

इतश्च-

श्रीवर्द्धमानांह्रिसरोजहंसः, श्रीमत्सुधर्मागणभृद्वतंसः ।
तदन्वये श्रीहरिभद्रसूरिः, प्रभापराभूतसुपर्वसूरिः ॥२६॥
शासनोद्योतकर्त्तारि, श्रीउद्योतनसूरयः ।
श्रीवर्द्धमानसूरीन्द्राः, वर्द्धमानगुणाधिकाः ॥२७॥
यैः श्रीपत्तननगरे, प्राप्तं श्री खरतराख्यवरबिरुदम् ।
दुर्लभभूपतितस्ते, जेजु-र्जैनेश्वराचार्याः ॥२८॥
निध्यङ्गवृत्तिमिषतः, प्रादुर्विहितानि नवनिधानानि ।
श्रीमदभयदेवार्यैः, जिनचन्द्रपदाम्बुजादित्यैः ॥२९॥
सर्वसूरिशिरोरत्नै-र्बभूवे जिनवल्लभैः ।
युगप्रधानपदवीशैः, श्रीजिनदत्तसूरिभिः ॥३०॥
ततो जिनेन्दुसूरीन्द्रा, राजपर्षदि हर्षदाः ।
श्रीजिनपतिसूरीन्द्राः, तदनु श्रीजिनेश्वराः ॥३१॥
श्रीमज्जिनप्रबोधाः, जिनचन्द्रयतीश्वराश्च कुशलकराः ।
जिनकुशलसूरिगुरवः, श्रीमज्जिनपद्मसूरिवराः ॥३२॥
लब्धाब्धयः श्रीजिनलब्धिसूरयः श्रीजैनचन्द्रादिमसूरिसूरयः ।
जिनोदयाः सर्वजनोदये क्षमाः, तदन्वये श्रीजिनराजसूरयः ॥३३॥
तदीय पट्टार्णवपूर्णिमेन्दवो, विराजि तेजोजितभास्करांशवः ।
विद्यागुणै रञ्जितसर्वसूरयो, जयन्त्वमी श्रीजिनभद्रसूरयः ॥३४॥
तेषां गुरूणामुपदेशमाप्य सत्पुत्रयुक्तो हरिराजदक्षः ।
अलीलिखच्चागमलक्षपूर्वं, सुवर्णवर्णं वरकल्पशास्त्रम् ॥३५॥
निध्यन्तरिक्षपक्षाब्दे (१५०९), लेखितं कल्पपुस्तकम् ।
विबुधैर्वाच्यमानं तदाचन्द्रं जयताच्चिरम् ॥३६॥

पं. मुनिसोमगणिना प्रशस्तिकृतोऽस्ति मङ्गलम् ॥

C/o. प्राकृत भारती अकादमी
13-A. मेन मालवीय नगर, जयपुर ३०२०१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीकीर्तिसुन्दरगणिकृत

अभयकुमार चौपाई

सं. मुनि धर्मकीर्तिविजय

खरतरगच्छीय श्रीजिनभद्रसूरिजीनी शाखामां आवता, कान्हजीना उपनामथी प्रसिद्ध एवा श्रीकीर्तिसुन्दरगणिए संवत १७५९मां जयतारणिपुर नामना गाममां श्रीजिनचन्द्रसूरिजीनी निश्रामां आ चौपाईनी रचना करी छे. आ चौपाई अद्यावधि अप्रकाशित[१] छे. खरतरगच्छमां आजे जे साहित्य उपलब्ध छे, तेना कर्ताओमां महाकवि जिनहर्षगणि, समयसुन्दर उपाध्याय, गुणविनय उपाध्याय, धर्मवर्द्धन उपाध्याय- आ नामो मुख्य छे. तेमांना धर्मवर्द्धन उपाध्यायजीना शिष्य कीर्तिसुन्दरगणिए आ रचना करी छे. आ ग्रन्थना कर्ता जिनभद्रसूरिजीनी परम्परामां आवता विमलकीर्तिगणि – विजयहर्षगणि – धर्मवर्द्धन उपाध्यायजीना शिष्य छे. तेओ द्वारा रचित साहित्यनी टूंकी नोंध **खरतरगच्छ साहित्यकोश**ना आधारे आ प्रमाणे छे :

विमलकीर्तिगणि–दशवैकालिकसूत्र स्तबक, उपदेशमाला स्तबक, कल्पसूत्र टीका सामाचारी, चन्द्रदूत (मेघदूतनी पादपूर्ति), जय तिहुअण स्तोत्र बालावबोध, पदव्यवस्था बालावबोध, बारव्रत रास, यशोधर रास, श्रेणिक चौपाई, इत्यादि.

विजयहर्षगणि- अढी द्वीप स्तवन, गोडी लोद्रवा पार्श्वजिन स्तवन.

धर्म्मवर्द्धन उपाध्याय- अमरकोश टीका, जिनस्तवन चोवीशी, अमरसेन वयरसेन चौपाई, भिन्न भिन्न स्तोत्र, दृष्टान्त छत्रीसी, विशेष छत्रीसी, दम्भ क्रिया चौपाई, दशार्णभद्र चौपाई, प्रश्नमय काव्य, व्याकरणसंज्ञा स्तोत्र, समस्यामय स्तोत्र, अनेक पार्श्वनाथ स्तोत्र – इत्यादि.

कीर्तिसुन्दर गणि- अवन्ती सुकुमाल चौढालिया, कल्पसूत्र टीका – कल्प सुबोधिका, मांकडरास, ज्ञानछत्रीसी, कौतुक पच्चीसी, वाग्विलासकथा संग्रह, फलोधी पार्श्वनाथस्तवन – इत्यादि.

---

१. महो० विनयसागरजी सम्पादित – खरतरगच्छ साहित्यकोश.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ चौपाईना अन्ते प्रशस्ति छे. तेमां साधुकीर्ति अने साधुसुन्दर एम बे नाम आवे छे. तेओ श्रीजिनभद्रसूरिनी शाखामां पद्ममेरु-मतिवर्द्धन-मेरुतिलक-दयाकलश-अमरमाणिक्य- तेमना शिष्य साधुकीर्तिगणि छे. तेमना शिष्य साधुसुन्दर छे. तेमां साधुकीर्तिगणिए संघपट्टक उपर अवचूरि (प्राकृत शब्दोना समसंस्कृत शब्दोना संग्रहस्वरूप) तेमज सत्तरभेदी पूजा रची छे. ज्यारे साधु सुन्दर गणिए उक्तिरत्नाकर, धातुपाठ उपर धातुरत्नाकर, जेसलमेर दुर्गस्थ पार्श्वनाथ स्तुति इत्यादिनी रचना करी छे.

आ चौपाई राजस्थानी भाषामां छे. चौपाईमां १२ ढालो छे. तत्र १ ढाल-२२ गाथा, २-२५, ३-१७, ४-३२, ५-२९, ६-२०, ७-२६, ८-२१, ९-१९, १०-२०, ११-१६, १२-१५ - एम २६६ गाथा छे.

आ ढाल केवी रीते गाई शकाय तेनी जाण माटे ग्रन्थकर्ताए जूनी-प्रचलित देशी ढालनी प्रथम पंक्ति मूकी छे. आना उपरथी ग्रन्थकर्ता संगीतशास्त्रना जाणकार तेमज साहित्यरसिक हशे एवुं अनुमान करी शकाय छे. आ चौपाईमां शिवमुनि, सुव्रतमुनि, धनमुनि, जोनकमुनि तेमज अभयकुमारनुं संक्षिप्त जीवन दर्शन करवामां आव्युं छे. तत्र-

प्रथम ढाल- श्रेणिकमहाराजा भगवंतने पोतानी गति विषयक प्रश्न पूछे छे. तेना जवाबमां वीरप्रभु श्रेणिकराजाने नरकगति, तेना निवारणरूप कपिलादासी दान आपे, कालसौकरिक पाडानो वध न करे - एम जणावे छे. त्यारबाद भावि प्रथम तीर्थंकर थशे- इत्यादि वर्णन करायुं छे.

द्वितीय ढाल- श्रेणिक महाराजाना समकितनी परीक्षा माटे देव गर्भवती साध्वीजीनुं रूप धारण करे छे, छतां पण श्रेणिकराजा वन्दन करे छे. देव प्रत्यक्ष थई २ गोला अने एक हार भेट रूपे आपे छे. श्रेणिकराजा चेलणादेवीने हार अने सुनन्दादेवीने २ गोला भेट आपे छे - इत्यादि वर्णन छे.

त्रीजी ढाल- राजा अभयकुमारने आदेश करे छे- चेलणादेवीना खोवायेला हारने सात दिवसमां शोधी लाव अन्यथा सजा थशे. तपास करवा छतां हार मळतो नथी. अन्ते सातमा दिवसे आठम होवाथी पौषध करे छे. ध्यानस्थ सुस्थितसूरिजीना कंठे हार देखी शिवमुनिना मुखमांथी 'भय' एवुं वचन नीकले छे. - इत्यादि.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चोथी ढाल- अभयकुमारना आग्रहथी शिवमुनि 'भय' वचन बोलवाना सन्दर्भमां पोताना जीवनवृत्तान्त रूप शिव अने शिवदत्त नामना बे बन्धुओनुं कथानक जणावे छे. धनथी थता अनर्थो देखाडी संवेगपूर्वक दीक्षा अंगीकार करी इत्यादि.

पांचमी-छट्ठी ढाल- बीजा प्रहरमां सेवा करवा आवेल सुव्रतमुनि पण गुरुजीना कंठे हार देखी भयभीत बने छे. तेमना मुखमांथी सहसा 'महाभय' एवुं वचन सरी पडे छे. अभयकुमारना पूछवाथी सुव्रतमुनि पोतानी कथा वर्णवे छे. आमां विशेषतः स्त्रीना कुटिल चरित्रनी वात छे.

सातमी ढाल- सूरिजीना कंठे हार देखी धनमुनिना मुखेथी 'अतिभय' शब्द बोलाय छे. तेना सम्बन्धमां स्वजीवनकथा कहे छे. अन्ते अविश्वसनीय अने निन्दनीय स्त्रीव्यवहार जाणी संयम ग्रहण करे छे.

आठमी-नवमी ढाल- चतुर्थप्रहरे सेवा करवा आवेल जोनकमुनि सूरिजीना कंठे हार देखी व्याकुल बनी जाय छे. अने 'भयातिभय' एम बोले छे. तेना अनुसन्धानमां श्रीमती नामनी पोतानी स्त्रीनुं दुश्चरित जणावे छे.

दशमी ढाल- अभयकुमार प्रभाते पौषध पारी सुस्थितसूरिजीने वन्दन करवा जाय छे. हार देखी विचारे छे के पौषधना प्रतापे ज हार मळ्यो. खुश थता थता श्रेणिकराजाने ते हार सोंपे छे.

अग्यारमी ढाल- श्रेणिकराजा अभयकुमारने दीक्षानी रजा नथी आपता. अभयकुमारना आग्रहथी राजा कहे छे- जे दिवसे हुं कहुं के जा, जा तारुं मोढुं न बतावीश, त्यारे मारी अनुमति समजी लेजे. एक दिवस भयानक ठंडीना दिवसोमां कायोत्सर्गध्याने रहेला मुनि याद आवतां मध्यरात्रिए चेलणादेवीना मुखेथी 'तेमनुं शुं थतुं हशे' एवुं वचन बोलायुं. श्रेणिकराजाने शंका थई, क्रोधना आवेशमां अभयकुमारने आदेश कर्यो- हमणां ज अन्तेपुर बाळी नाख, इत्यादि वर्णन छे.

बारमी ढाल- अभयकुमार दीक्षा ग्रहण करे छे. सुनन्दा पण संयम ले छे. इत्यादि चर्चा साथे अन्ते प्रशस्ति छे. वि.सं. १००५मां 'जम्बू'मुनि थया हता. तेओए रचेल 'मणिपति राजर्षि' नामनो ग्रन्थ आजे पण उपलब्ध छे. तेमां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ पांच मुनिओना कथानक प्राप्त थाय छे.

आ प्रति प.पू.आ.श्री विजयशीलचन्द्रसूरिजीनी संगृहीत हस्तप्रतोमांथी प्राप्त थई छे.

॥ ६०॥ उपाध्यायश्रीधर्मवर्द्धनगुरुभ्यो नमः ॥

जगगुरु प्रणमुं वीरजिन अधिक भाव मन आणि ।
सुपसायैं जिणरैं सहू वंछित चढैं प्रमाण ॥१॥
गुण साधांरा गावतां कर्मनिर्जरा होइ ।
सुणतां समकित सुध हुवैं कहुं कथानक सोइ ॥२॥
सहु सुबुधी-सिरसेहरौ अधिक कीया उपगार ।
कीरति अभयकुमाररी सहु जाणैं संसार ॥३॥
तसु संबंध संखेपसुं अवर च्यार अणगार ।
शिव १ सुव्रत २ धन ३ जोनक ४जु एहना कहुं अधिकार ॥४॥

ढाल-१ मगधदेश श्रेणिकभूपाल एहनी-

एणहिजे जंबूदीपैं जाण भरतखेत परसिद्ध प्रमाण ।
मगधदेश तिणमाहे मुदैं अधिकौ अधिकौ दिन दिन उदैं ॥१॥
तिहां कुशाग्रपुर पाटण नाम श्रेणिकराजा बहुगुणधाम ।
तसु सुत मंत्री अभयकुमार न्यायवंत सहुजन सुखकार ॥२॥
इण अवसर रहतां आणंद समवसर्या श्रीवीरजिणंद ।
आडंबरसुं श्रेणिकराय वांदण चाल्यौ प्रभुना पाह्य ॥३॥
समवसरण जाणे ऊगा सूर प्रातीहारिज आठ पहूर ।
साचवैं पंचाभिगमन सार तीन प्रदक्षिण द्यैं तिणवार ॥४॥
बैंठौ भूप यथायोग्य देखि जिनवर द्यैं उपदेश विशेष ।
गति आगतिना चल्या अधिकार श्रेणिक पूछैं निज भवपार ॥५॥
स्वामी मूझ वीनति सरदहौ किण गति हुं जास्युं ते कहौ ।
भाखैं उत्तर श्रीभगवान पामिसि प्रथम नरक दुःखखानि ॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा कहैं हुं सेवक सुद्ध नरक पडुं नही सौ कहौ विद्ध ।
कहैं भगवंत निकाचितकर्म न हुवैं किणही भांतैं नर्म ॥७॥
आउबंध को मेटैं नही प्रथम नरक तिण जाइस सही ।
श्रेणिक वलि कहैं वीनति धरौ नरक न जाउं सो विद्ध करौ ॥८॥
कहैं जिन, राजा सुणहु निदान दासी कपिला जौ द्यैं दान ।
कालकसूकरीयौ मनरसैं भैंसा मारैं नही पांचसैं ॥९॥
ए छैं नरकनिषेधउपाय वांदीनैं घरि आयौ राय ।
कपिलानैं कहैं दे तु दान माहरैं छैं बहुला धनधान ॥१०॥
ते बोलैं मरणौ ही सही मैं निज हाथे देवौ नही ।
कर चाटू बंधायौ तीयैं कहैं हुं न दीयुं चाटू दीयैं ॥११॥
नृप कहैं सुणि कालकसूरीया पापैं पेट घणुं पूरीया ।
भैंसौ हिव मत मारे कोय ते कहैं ए वातां किम होय ॥१२॥
वास्यौ न रहैं सीच्यौ कूप मनसुं मारैं धरैं सरूप ।
श्रेणिक वीर वले वांदीया कह्या तुहारा दोउं कीया ॥१३॥
दानदयाविध सगली लही केवलीए सहु वातां कही ।
सुणि श्रेणिक हूऔ दिलगीर वलि तेहनैं संतोषैं वीर ॥१४॥
पहिली नरक थकी नीकली मो सरिखौ जिन थाइस रली ।
पदमनाभ पहिलौ जिन हुसी श्रेणिक सांभलि हूऔ खुसी ॥१५॥
जिन वांदी पुर आवैं जिसैं दीठौ सरवर पासैं तिसैं ।
साधुवेसनैं हाथे जाल काढैं माछलीयां तिण काल ॥१६॥
कहैं तेहनैं नृप प्रणमी पाय जिनशासन इण कर्म लजाय ।
साधु कहैं तडकीनैं वली जोईजैं मुझ इक कांबली ॥१७॥
जाण्या तो सरिखा जजमान निंद घणीनैं थोडौ दान ।
नृप मीठे वचने सतकार कांबलि दीधी समकितधार ॥१८॥

दोहा-

देव विमासैं दिल्हमैं कीध परीक्षा कर्म ।
डिग्गायौ पिण ना डिग्यौ धन राजा दृढधर्म ॥१॥
एक परीक्षा वलि करुं नृपति चुकावुं नेट ।
साधु संघातैं साधवी पूरे मासे पेट ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौहटा माहे मोलवैं सूआवडिरौ साज ।
पुरप्रवेश करतां थकां दीठौ श्रेणिक राज ॥३॥
अंबाडीथी उतरी पोतैं लागौ पाय ।
हवैं जिनशासन हेलणा एकांतैं रहौ आय ॥४॥
जिऊं तुहारैं जोइजैं हुं सहु पूरुं हुंस ।
कोई जोए न कर्मसुं राजा कहैं इण रुंस ॥५॥
हिव ते सुर परतिख हूऔ कहैं एम करजोडि ।
धन धन तुं सुध समकिती हवैं कुण ताहरी होड ॥६॥
मैं तुझ परीक्षा कारणैं इतरी कीध उपाधि ।
मोटा नरपति माहरौ ए खमजे अपराध ॥७॥
दीठौ दरसण देवनौ निःफल न हुवैं नेट ।
दुइ गोला नैं हार इक भूप भणी कीय भेट ॥८॥
ए हार जब त्रूटिस्यैं मरिस्यैं सांधणहार ।
इम कहि सुर हूऔ अदृश्य नृप आयौ गृह सार ॥९॥

ढाल- बीजी-

(सीता तौ रूपैं जाणे आंबा डालैं सूडीही
सीता अति सौहें-एहनी)

अंतेवरमैं आयौ राजा धरि हरख सवायौ हो
सुणिज्यो सुखकारी ।
चेलणानैं दीयौ हार पूरौ धरि तिणसु प्यार हो
सुणिज्यो सुखकारी ॥१॥
दोइ गोला माटीना नंदाराणीनैं दीना हो सुणि० ।
रीस भरी कहैं राणी मुझनैं पिउ ओछी जाणी हो सुणि० ॥२॥
भांड्या बिहुं भडकाई उणमाहि हूई अधिकाई हो सुणि० ।
एक मैं कुंडल पामैं दोइ वस्त्र भला बीजामैं हो सुणि० ॥३॥
नयणे अदभुत निरखी हलफलनैं लीधा हरखी हो सुणि० ।
चेलणा देखी तेह मांगैं नृपसुं धरि नेह हो सुणि० ॥४॥
नृप कहैं दीधौ किम लीजैं अधिकौ तौ लोभ न कीजैं हो सुणि० ।
करणौ नही अतिक्रोध राणी रही मन प्रतिबोध हो सुणि० ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरखैं पहिरैं हार सुंदरि सजनी सिणगार हो सुणि० ।
राजानौ मन रंजैं गुण अधिकीनैं कुण गंजैं हो सुणि० ॥६॥
इक दिन तूटौ हार मृत पामैं सांधणहार हो सुणि० ।
राजा पहड दिरावैं सांधैं ते लख धन पावैं हो सुणि० ॥७॥
वात सुणी मणिहारैं मन माहे एम विचारैं हो सुणि० ।
हुं निरधन वृद्ध देह परिवारनैं भूख अछेह हो सुणि० ॥८॥
लाख दर बक्षौ होई तौ मूंआं दुख नही कोई हो सुणि० ।
जीवित माहरौ जासी पिण पाछला सोहरा थासी हो सुणि० ॥९॥
अधलख पहिली लीधौ ते हार सांधीनैं लीधौ हो सुणि० ।
तिण वेला ते मूऔ तिणहिज पुर वानर हूऔ हो सुणि० ॥१०॥
फिरतौ निज घर आयौ तिहां जातीस्मरण पायौ हो सुणि० ।
बेटा आगलि आवैं लिखि अक्षर वात जणावैं हो सुणि० ॥११॥
बाकी मुझ अधलाख नृप दीधौ कैं नही दाख हो सुणि० ।
सुत कहैं तुं मूऔ तात अम्हनैं कुण पूछैं वात हो सुणि० ॥१२॥
अम्हनैं न दीयैं राय करि तुंहि ज कोइ उपाय हो सुणि० ।
रूठौ वानर तेह जोवैं छलछिद्र अछेह हो सुणि० ॥१३॥
किणही विधि ल्युं हार इम चिंतैं लैंण प्रकार हो सुणि० ।
एक दिन चेलणा राणी जलक्रीडा कारण जाणी हो सुणि० ॥१४॥
खूटैं मूंक्यौ हार ले नाठौ कपि तिण वार हो सुणि० ।
आणी सुतनैं दीधौ कपि आपणौ कारिज कीधौ हो सुणि० ॥१५॥
हार न लाभैं राणी अधिकी दिलगीरी आणी हो सुणि० ।
राजा खबर करावैं पिण किहां ही हार न पावैं हो सुणि० ॥१६॥

दोहा-

तेडी अभयकुमारनैं हुकम करैं नरनाह ।
किंहांहिक हार करौं प्रगट सातां दिवसां माहि ॥१॥
नहीतौ तुं पामिसि सजा करि तुं हुकम प्रमाण ।
खबर करंतां नगरमैं दिन षट हूआ जाण ॥२॥
हार किहां लाधौ नही चिंतैं अभयकुमार ।
आठमिरौ दिन आज छैं ल्युं पोसौ सुविचार ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजैं आचारिज तिहां नामैं सुस्थितसूर ।
च्यार शिष्य तिण रैं चतुर सेवा करैं सनूर ॥४॥
शिव १ सुव्रत २ धन ३ तीन ए जोनक ४ चोथौ जाण ।
जिनतुलना करणी करैं आराधैं जिन आण ॥५॥
अठ पहुरी पोसौ अडिग कीधौ अभयकुमार ।
तिण अवसर तिण प्रहारनौ एह हूऔ अधिकार ॥६॥

ढाल-तीजी-

(चतुर सनेही मोहनां एहनी-)
हिव मणिहारैं जाणीयौ हार अछैं मो पासो रे ।
अभयकुमार जौ जाणसी तौ करसी कुलनासो रे
अरथसुं अनरथ ऊपजै ॥१॥
बाप वानरनैं कहैं ए ले जा हारो रे ।
डोकरडीरा घरमांहे सीह न मायैं सारो रे अरथसुं ॥२॥
भीख मांगिनैं खावसां पिण हारसुं नही कामो रे ।
अभयकुमार जो अटकलैं तौ माहरी पाडैं मामो रे अरथसुं० ॥३॥
वानर हार लेई चल्यौ आयौ षोषधशालो रे ।
आप आचारिज बाहिरैं काउसग छैं तिण कालो रे अरथसुं० ॥४॥
हार सूरिकंठैं ठवी कपि पहुतौ निज ठामो रे ।
अभयकुमार पोसामाहे ध्यावैं ध्रम गुणग्रामो रे अरथसुं० ॥५॥
रातिसमै ससि ऊगीयौ शुभध्यानैं चित राखैं रे ।
हाररतन वलि चांदणैं झिगमिग झिगमिग झाखैं रे अरथसुं० ॥६॥
एक पहुर रजनी गई पहिलौ शिष शिवरायो रे ।
करि सज्झाय गुरां कनैं वेयावचनैं आयौ रे अरथसुं० ॥७॥
गुरु काउसगमाहे रह्या कंठैं निरखैं हारो रे ।
चितमाहे अतिचमकीयौ ए विधि केण प्रकारो रे अरथसुं० ॥८॥
उपासरा मैं आवतां निसही वीसर भोलैं रे ।
मुनि शिवराज मुखैं करी भयं वचन इम बोलै रे अरथसुं० ॥९॥
अभयकुमार सुणी कहैं क्युं गुरुजी भय केहौ रे ।
मो पासैं बैंठां थकां उपजैं किम भय एहो रे अरथसुं० ॥१०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिवर कहैं मुझ मूलगी चीता आई वातो रे ।
अभय कहैं मुह कनैं कहौ सो संबंध सुहातो रे अरथसुं० ॥११॥

दोहा-

उज्जेणीपुरमें वसां बे भाई इक चित्त ।
क्षत्रिय कुल निरधन घणुं नामैं सिव १ सिवदत्त २ ॥१॥
दरव-उपावण दुहुं गया सोरठ देस मझार ।
हाटे विणजां गाममैं भोला जिहां नरनारि ॥२॥
अधिकौ ले ओछौ दीयौ वंचया सगला लोक ।
करि थांपणमोसा कपट रुपीया कीधा रोक ॥३॥
माहोमाहि कीयौ मतौ दुहुं भाई इकदिल्ल ।
कुशले घर पहुचां हिवैं न करौ काई ढिल्ल ॥४॥
चुंप धरीनैं चालीया जोखौ मारग जाण ।
कडि बांधी नौली वडैं चिंतैं इण अवसाण ॥५॥
आधौ तौ लेसी उरौ लघुभाई करि लाग ।
घात देखिनैं घाउ करि मारुं इणहिज माग ॥६॥
किणहिक गामैं आइनैं वासौ वसीया रात ।
बीजैं दिन चाल्या बिहुं प्रगट हूआं परभात ॥७॥
वडौ कहैं लघुभ्रातनैं सहु धन बेहुं सीर ।
कडीयां बांधि तुं वासणी हुइ मनमाहि सधीर ॥८॥
बांधंतां लघुभ्रात रैं मनमैं उपनौ पाप ।
मोटौभाई मारिनैं ए सहु धन ल्युं आप ॥९॥

ढाल-चौथी-

(बाहूबलि चारित लीयौ रे- एहनी-)
इम चीतवतां आवीयौ रे आगैं सरवर एक ।
स्नान करण बेहुं सही रे वस्त्र उतार्या विवेक
सुगुण नर धन अनरथनी खाणि
सुगुण नर होवैं जिणथी हितहाणि
सुगुण नर ए कहीया इग्यारमा प्राण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुगुण नर जे छोडइ तेह सुजाण
चतुर नर धन अनरथनी खाणि ॥१॥ आंचली ।
नौली ऊंची मुंकिनैं रे सरवर तट बिहुं साथ ।
वडौ स्नान पहिली करै रे लघु द्यैं पूठैं हाथ सगुण० धन० ॥२॥
वृद्ध जाणै मैं लघु भणी रे आणी मारण बुद्धि ।
लघुभाई तौ माहरी रे सेव करैं छैं शुद्ध सुगुण० धन० ॥३॥
बोल्यौ सरल मनैं करी रे सुणि माहरा लघुभ्रात ।
काल्हे मुझ उपजी हुती रे तुझ मारणरी वात सुगुण० धन० ॥४॥
साजन वालंभ तुं सही रे पूरव पुण्यैं लाध ।
मैं मन अनरथ आणीयौ रे तुं खमिजे अपराध सुगुण० धन० ॥५॥
मोनें पिण लहुडौ कहैं रे उपनीथी मति आज ।
नौली कडि बांध्यां पछैं रे कहतां आवैं लाज सुगुण० धन० ॥६॥
बेहुं कहैं ए पापनौ रे मेल्यौ आंपे माल ।
जौ ए घरि ले जावसां रे तौ होसी केई जंजालसुगुण० धन० ॥७॥
नौली नांखौ झालिनैं रे परही पांणी मांहि ।
केई दरव कमावसां रे जौ ठां कुशल उछाह सुगुण० धन० ॥८॥
कहौ ते धन किण कामरौ रे अनरथ हवैं जिण नेट ।
हेम छुरी ह्वैं हाथमैं रे कोई न मारैं पेट सुगुण० धन० ॥९॥
बेहुं भाई संबाहिनै रे नौली नांखी नीर ।
बाकौ फाडि बैंगै हुतौ रे मगरमच्छ तिहां तीर सगुण० धन० ॥१०॥
उदरमैं तिणरैं ऊतरी रे ते नौली तिण वार ।
चित चौखै बेहुं चालिनैं रे आया निज घरबार सगुण० धन० ॥११॥
माता बहिन हुती मिल्या रे हूआ हरखित प्रधान ।
खांड घिरत आणि खांतिसुं रे प्रघल कीया पकवान सगुण० धन० ॥१२॥
हिव तिण सरवर जायनैं रे धीवर नांख्यौ जाल ।
नौलीवालौ माछलौ रे माहि आयौ तिण काल सगुण० धन० ॥१३॥
चौहाटामाहे मांडीयौ रे वेचणनैं तिणवार ।
माता तिणवेला कहैं रे पुत्रीनैं धरि प्यार सगुण० धन० ॥१४॥
बेहुं बेटारैं कारणैं रे कीधा छैं पकवान ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुं बाजारैं जाइनैं रे तरकारी काई आण सगुण० धन० ॥१५॥
बेटी बाजारैं जई रे मोल लीयौ ते मच्छ ।
घरि आणी थाली विचै रे चीरणौ मांड्यो अच्छ सगुण० धन० ॥१६॥
मच्छ वनारतां वासणी रे थालीमैं पडी आय ।
हेम देखी मन हरखीयौ रे छांनी लीधी छिपाय सगुण० धन० ॥१७॥
भीति तणैंहि ज आंतरैं रे मा बैंठीथी माहि ।
सोवन खणकौ सांभली रे चित लेवा हूई चाहि सगुण० धन० ॥१८॥
मच्छ विदारतां माहिसुं रे स्युं निकल्यौ कहि साच ।
पुत्रीसुं अति भडकिनैं रे बोलैं माता वाच सगुण० धन० ॥१९॥
सुता कहैं माहरैं सिरै रे क्युं द्यैं झूठ कलंक ।
तब मायैं बेटी तणैं रे दीधौ धाव निसंक सगुण० धन० ॥२०॥
भयसुं नौली खिर पडी रे माताइ लीधी तेह ।
दोइ भाई म्हे ओलखी रे तेहज नौली एह सगुण० धन० ॥२१॥
दुख कारण धन देखिनैं रे छोडी सहु घरबार ।
चोखैं चित चारित लीयौ रे संवेग मैं धरि सार सगुण० धन० ॥२२॥
सिव मुनि अभयकुमार सुं रे कहैं इम मीठैं साद ।
भयकारण धनवारता रे आई मोनैं याद सुगुण० धन० ॥२३॥

इति वा० कांन्हजीकृतायां चतुष्पदिकायां शिवराजमुनीश्वरकथानकं प्रथमं समाप्तम् ॥

★

अथ सुव्रतसाधुरभयकुमारस्य पुरतः स्वप्रवृत्तिं ब्रवीति ।

दोहा-

बीजैं पहुर गुरां कनैं सुव्रत आयौ सीस ।
हार देखिनैं हलफल्यौ ए स्युं कारण ईस ॥१॥
पूठौ थानक पैंसतां **महाभयं** कहैं वाणि ।
अभय कहैं अणगारजी किसौ महाभय जाण ॥२॥
साधु कहैं मुझ घरतणी चीता आई वात ।
व्रत लीधौ जिण वासतैं ते सुणिज्यो अवदात ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंग देशमैं गाम इक वसुं तठैं हुं वास ।
जाति कलंबी जर घणी नारी रूप निवास ॥४॥
रंगै उम्मंगैं रहां हिय पूरंतां हाम ।
पल्लीपति सैं पांचसुं आयौ लुंटण गाम ॥५॥
लुंटीनै सगलौ लीयौ माहरा घररौ सार ।
तिण खिण चोरांनैं विटल बोली म्हारी नारि ॥६॥
जौ थे मोनैं आदरौ राखौ रुडी रुंस ।
तौ थांहरे साथैं हुवुं पूरौ म्हारी हुंस ॥७॥
हुं मुझ घर रैं खूंहणैं छिपि बैंठो तिणवार ।
कामिणि जाणैं किहांइकैं नाठौ मुझ भरतार ॥८॥
चोर लुंटीनैं चालीया सुंदरि लीधी साथ ।
लाज लगाम तड्यां पछैं नारी किणरैं हाथ ॥९॥
चोरे जाण्यौ नही फछैं वामा ए शुभ वेस ।
तरैं जाइ कीधी तुरत पल्लीपतिनैं पेस ॥१०॥

ढाल-पांचमी

(प्रीतम सुणि मोरा-एहनी-)

गाम अम्हारौ फिरि वस्यौ स्त्री विण रहुं तिण ठौर रे सुणिज्यो सुखकारी ।
एक दुख नैं हासौ घरे लोक संतावैं जोर रे सुणिज्यो सुखकारी, आंकणी ॥१॥
संतावैं परिजन सहू फिट फिट करैं मुझ कोर रे सुणि० ।
नारि ही राखि सक्यौ नही माणस नही तुं ढोर रे सुणि० ॥२॥
विविध वचन श्रवणे सुणी मुझ जाग्यौ अहंकार रे सुणि० ।
चालिनैं गाम चोरांतणैं पहुतौ हुं तिणवार रे सुणि० ॥३॥
इक डोकरडीरैं घरै दिन रहीयौ दुइ च्यार रे सुणि० ।
एक दिन मैं बूढी भणी कहीयौ घर-अधिकार रे सुणि० ॥४॥
पल्लीपति इण पुरधणी मुझ नारी तसु गेह रे सुणि० ।
कहि संदेसौ जाइनैं इक दीनार लैं एह रे सुणि० ॥५॥
कहिजे तुझ पति आवीयौ वात कहे तुं वणाइ रे सुणि० ।
बूढी पल्लीपतितणी नारीनैं कहे आइ रे सुणि० ॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एह वचन कहीया उठैं सुंदरि थारौ सामि रे सुणि० ।
माहरैं घरि आयौ अछैं सुव्रत जेहनौ नाम रे सुणि० ॥७॥
नीसासा नांखैं अछैं दुख थारैं दिलगीर रे सुणि० ।
सगलांसुं विरतौ थकौ नयणे वरसैं नीर रे सुणि० ॥८॥
कांइक पघली कामिणी बूढीनैं कहैं आम रे सुणि० ।
आज पल्लीपति चालिनैं जासी अलगैं गाम रे सुणि० ॥९॥
तुं पतिनैं कहि जायनैं सांझैं आज्यो अवश्य रे सुणि० ।
आवी न सकुं हुं उठैं पडीय अछुं परवश्य रे सुणि० ॥१०॥
मुझनैं बूढी आयनैं वात कही समझाय रे सुणि० ।
पल्लीपति चाल्यौ परौ मुह अंधारौ थाय रे सुणि० ॥११॥
नारी पासैं हुं गयौ खरी हूई खुस्याल रे सुणि० ।
मोसुं प्रेम धरे मिली नजरसुं कीधी निहाल रे सुणि० ॥१२॥
दीवा कीधा दुहुं दिसी मुझ बैंसाण्यौ पलिंग रे सुणि० ।
आगैं बैंठी आयनैं चरण धोवैं मुझ चंग रे सुणि० ॥१३॥
लाग जोग आयौ भलां प्रीतम जीवन प्राण रे सुणि० ।
हुं तुम्ह पगरी पानही बोलैं एहवी वाणि रे सुणि० ॥१४॥
केई वात इसी कही पाथरही पथलाय रे सुणि० ।
पल्लीपतिनैं चालतां शकुन भूंडा तिहां थाय रे सुणि० ॥१५॥
पल्लीपति पूठौ वल्यौ आयौ निज घरबार रे सुणि० ।
खोलि किमाड कहैं खडौ पडीयौ करैं पुकार रे सुणि० ॥१६॥
पल्लीपति फिरि आवीयौ कामिणि कहैं मुझ आय रे सुणि० ।
हुं बोल्यौ मुझनें परौ छानी ठाम छिपाय रे सुणि० ॥१७॥
पलिंग नीचैं घालीयौ खाट पछेडौ संबाहि रे सुणि० ।
अंगना बार ऊघाडीयौ आयौ पलीपति माहि रे सुणि० ॥१८॥

ढाल- छठी-

(करम परीक्षाकरण कुमर चल्यौ रे- एहनी-)
पल्लीपतिनैं कहैं माहरी पिया रे वारू नेहरी वाहत (वात)
थां आयां विण क्युं करि जावती रे खट मासां सम राति
मौहैं मातौ युं करैं मानवी रे ॥१॥ आंकणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवैं माहरौ पति जौ पुरैं रे तौ थे स्युं करौ जास ।
कहैं पल्लीपति अति संतोषिनैं रे तुं परही द्युं तास मौहैं० ॥२॥
नखरा मांड्या सांभलि नारीयैं रे थांहरौ एह सनेह ।
माहरैं तौ थेहिज आधार छौ रे दीपैं थां करि देह मौहैं० ॥३॥
शय्या नीचैं हुं सगलौ सुणुं रे कहैं पल्लीपति तास ।
इतरा वचन कह्या जे एहवा रे हुं करतौ थौ हास मौहैं० ॥४॥
ताहरौ परण्यौ पति आवैं इहां रे सही तसु करुं रे संहार ।
नयन संज्ञायैं नारि दिखावीयौ रे मुझनैं दीधी रे मार मौहैं० ॥५॥
नीलैं वाध्रहुती मुझ बांधिनैं रे गलीमैं दीधौ गुडाय ।
सेजैं पल्लीपति सूई रह्यौ रे नारी कंठ लगाय मौहैं० ॥६॥
सबलै वाध्र घडीकैं सूकीयौ रे भाजण लागा मौर ।
वाध्रनी वासैं कुतरौ आवीयौ रे माहरा वखतनैं जोर मौहैं० ॥७॥
कुतरैं मुखसुं बंधण कापीया रे सहु अंग हूआ सरास ।
अमरस तौ पिण हुं धरि अंगमैं रे पहुतौ पलीपति पास मौहैं० ॥८॥
खड्ग पलीपतिनौ कर झालिनै रे तुरत जगाई नारि ।
मो साथैं अणबोली चलि परी रे नहीतर जाइस मारि मौहैं० ॥९॥
महिला मन विण डरती मरणसुं रे आई माहरैं लार ।
चीरखंड नांखंती ते चलैं रे अहिनाण काज विचारि मौहैं० ॥१०॥
जब पल्लीपति प्रहसम जागीयो रे नवि देखैं ते नारि ।
वाहर चढीयौ परिवारसुं रे सबल रीसैं सिरदार मौहैं० ॥११॥
सालू टुकडांरा स(अ)हिनाणसुं रे वाहर पहुती आइ ।
मुझ घाइल करि नारी ले गयौ रे हुं करतौ हायहाय मौहैं० ॥१२॥
रीवां करतौ मोनैं देखिनै रे आयौ वानर एक ।
घसिनैं लेपी घाव ऊपरि जडी रे संरोहणी सुविवेक मौहैं० ॥१३॥
घाव समाधि हूआ माहरा सहू रे दूर हूऔ सहु दुख ।
पूरव पुण्यतणैं परसादसुं रे सरीरैं हूऔ सुख मौहैं० ॥१४॥
टोलीसुं वानर टाल्यौ हुतौ रे वडौ हूऔ थौ अै (और) ।
तिणनैं मारी वानरयूथमैं रे थाप्यौ मूलगी ठौर मौहैं० ॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसरावण हुं हूऔ उण थकी रे ए करिनैं उपगार ।
तौ पिण माहरा मनमैं युं रही रे आणुं माहरी नारि मौहैं० ॥१६॥
तिहांथी चाल्यौ पल्लीपति घरे रे आधी राति अंधार ।
मैं जाइनैं पल्लीपति मारीयौ रे पूरौ दीध प्रहार मौहैं० ॥१७॥
नारी लेनैं तिहांथी नीकल्यौ रे आयौ आपणैं गाम ।
माहरा कुटुंब हुती आवी मिल्यौ रे करिनैं आयौ काम मौहैं० ॥१८॥
नारि आचार इसा हुं निरखिनैं रे जाणी अथिर संसार ।
छता कनक नैं कामिनि छोडिनैं रे लीधौ संजमभार मौहैं० ॥१९॥
चीता आई ते मुझ वातडी रे महाभयं कह्यौ वचन्न ।
अभयकुमार कहैं अणगारजी रे धरमी गुरु थे धन्न मौहैं० ॥२०॥

इति सुव्रतसाधुसम्बन्धः समाप्तः ।

दोहा-

तीजैं पहुरैं रातिरैं चेलौ धन्नौ नाम ।
गुरु सेवा करतैं थकैं हार देखि गलैं ताम ॥१॥
उपासरामैं आवतां **अतिभय** कहीयौ तेम ।
अभयकुमार कहैं तुहे कह्यौ वचन ए केम ॥२॥
धन्नौ कहैं धुरवारता चितमैं आई चीत ।
अभय कहैं मुझ वारता संभलावौ शुभरीति ॥३॥

ढाल-सातमी-

(आज आणंदा रे- एहनी-)
उज्जेणीनगरीतणैं जीव जोवौ रे
हुं वसुं एकण गाम करमगति जोवौ रे ।
जांणी तल क्षत्रियकुलैं जीव जोवो रे
धन्नौ माहरौ नाम करमगति जोवौ रे ॥१॥
परण्यौ हुं धारापुरैं जीव० एकदिन मनऊमाह करम० ।
स्त्री लेवानैं चालीयौ जीव० एकाकी असि साहि करम० ॥२॥
पुररैं पास मसाणमैं जीव० सूली दीधौ चोर पाप करम० ।
तिण पासैं तिय रोवती जीव० रातैं करैं विलाप करम० ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैं पूछ्यौ तुं मानिनी जीव० रोवैं क्युं ढांकी मुख करम० ।
ते कहैं कहीयैं तिण कन्हैं जीव० जे वंटावैं दुख करम० ॥४॥
मैं कह्यौ हुं तुझ दुख हरुं जीव० दिल सुध धीरज दीध करम० ।
नारि कहैं पति माहरैं जीव० काइक चोरी कीध करम० ॥५॥
कोटवालैं पकडी करी जीव० दीधौ सूली एह करम० ।
भोजन ल्याई हुं इण भणी जीव० नारी धरिनैं नेह करम० ॥६॥
अति ऊंचौ मुख एहनौ जीव० आपड न सकुं आप करम० ।
दे न सकुं मुखि कौलीयौ जीव० तिण हुं करुं विलाप करम० ॥७॥
कंध चढाव कृपा करी जीव० कवल देवानैं काज करम० ।
तुम ऊंचा मत ताकिज्यो जीव० मोनैं आवैं लाज करम० ॥८॥
तजी खड्ग मैं तेहनैं जीव० मैं ऊपाडी कंध करम० ।
तिण वेला हूऔ तिहां जीव० सुणिज्यो ते संबंध करम० ॥९॥
मो ऊपरि टछकौ पडयौ जीव० ताक्यौ ऊपरि ताम करम० ।
काटि काटि तसु कालिजौ जीव० खाती दीठी वाम करम० ॥१०॥
पटकी मैं तेहनैं परी जीव० नाठौ तिहांथी नीठ करम० ।
ते असि ले उतावली जीव० पडीज माहरैं पीठ करम० ॥११॥
नगर दिसी आयौ निसैं जीव० जीव सबल जंजाल करम० ।
दरवाजा आडा दीया जीव० पैंठौ हुं पुरनैं पाल करम० ॥१२॥
उण वेला ते आपडी जीव० कीधौ मुझनैं घाव करम० ।
क्रोधणि तिण काटी लीयौ जीव० पूठा सेती पाव करम० ॥१३॥
गृह पोतानैं ते गई जीव० टली मरण मुझ घात करम० ।
साचोवायैं देहरैं जीव० रहीयौ हुं तिहां रात करम० ॥१४॥
इकतारी हुं आणिनैं जीव० रहीयौ ध्यान विलग्गि करम० ।
देवैं परतख होइनैं जीव० साजौ कीधौ पग्ग करम० ॥१५॥
तिहांथी ऊठी सासरैं जीव० आयौ पाछिली राति करम० ।
बैंठी जाडिनैं बारणौ जीव० करैं माहि केई वात करम० ॥१६॥
ताकी जोयौ में तिहां जीव० दीसैं दीपक जोति करम० ।
माहे मुझ सासू वहू जीव० हरखैं वातां होत करम० ॥१७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मांस तली बेहुं मिली जीव० षांतिसुं बेहुं खाय करम० ।
पूछैं मा पुत्री भणी जीव० अचरिज अधिकैं आय करम० ॥१८॥
बीजा दिन हूंती बहू जीव० मीठौ लागैं मंस करम० ।
ताहरैं जम्माई तणौ जीव० पग जाणे परसंस करम० ॥१९॥
वातां सुणिनैं विमासीयौ जीव० तेतौ माहरी नारि करम० ।
अहो चरित असती तणैं जीव० पामैं कोइ न पार करम० ॥२०॥
आणानैं आयौ हुतौ जीव० जीवितसम हुं जाणि करम० ।
तिण कुसती लज्जा तजी जीव० पाड्या माहरा प्राण करम० ॥२१॥
कालौ मुंह कुनारिनौ जीव० तिहांथी पाछौ भागि करम० ।
सुस्थितजीरौ शिष्य हूऔ जीव० आणी मन वैंराग करम० ॥२२॥
अतिभय वातां सांभरी जीव० अतिभय कह्यौ वचन्न करम० ।
अभय कहैं अणगारजी जीव० धन्नाजी थे धन्न करम० ॥२३॥

इति धन्ना-ऋषीश्वरसम्बन्धस्तृतीयः ।

दोहा-

चौथौ शिष चौथैं पहुर सदगुरुनी करि सेव ।
कहतौ मुखि **भयातिभय** आयौ थानक हेव ॥१॥
कर जोडी मुह तौ कहैं जोनकजी तुम्हे जाण ।
केहौ अम्ह भयातिभय इण निरभय अवसाण ॥२॥
चीता आयौ घरचरित साधु कहैं मुझ तेह ।
कहैं मुहतौ किरपा करी मुझ संभलावौ एह ॥३॥

ढाल-आठमी-

(नेमिप्रभु माहरी वीनतीजी- एहनी-)

वीतग एहवी वारताजी सांभलौ अभयकुमार ।
नयरि उज्जेणि माहे वसैंजी धनदत्तनाम विवहार ॥१॥
वीतग एहवी वारताजी-आंकणी ।
भामिनी तासु भद्रा भलीजी तेहनौ पुत्र हूं तेम ।
श्रीमती माहरी सुंदरीजी परम धरती मुझ प्रेम वीतग० ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाउ मुझ धोई पाणी पीयैंजी निपट कपट धरैं नेह ।
मानिनी ते कहैं माहरैंजी अधिक मन हुंस छैं एह वीतग० ॥३॥
चमरजातीय मृगपुंछनाजी मांस खावा मुझ हुंस ।
मैं कह्यौ ते किहां पामीयैंजी हाथ आवैं किण रुंस वीतग० ॥४॥
नारि कहैं राजगृह नगरीयैंजी श्रेणिकरायनैं गेह ।
जाइ आणौ तुम्हे जुगतिसुंजी अरज मानौ मुझ एह वीतग० ॥५॥
आवीयौ हुंई उतावलौजी राजगृहनगर आराम ।
रंगसुं वेसीया तिहां रमैंजी मगधसेना तसु नाम वीतग० ॥६॥
एक विद्याधर आइनैंजी अपहरी ले गयौ वेस ।
करैं तब परिजन कूंकवाजी ऊपनौ एह कलेस वीतग० ॥७॥
तांणि सर वीधीयौ मैं तिकोजी मगधसेना तजी तेण ।
आइनैं ल्यैं मुझ वारणाजी हुं तुझ पगतणी रेणु वीतग० ॥८॥
गिणि उपगार गणिका तिणैंजी ले गई मुझ भणी गेह ।
मुझ भणी पूछीयौ पूठलौजी सरव संबंध ससनेह वीतग० ॥९॥
मैं कह्यौ सरल चित्तैं सहूजी अटकल्या तेण आचार ।
कपट केलवि करि काढियौजी सील विण ताहरी नारि वीतग० ॥१०॥
मैं कह्यौ माहरी मानिनीजी पतिभगती बहु प्रेम ।
ते कहैं जो सती ह्वैं हि तू जी काढीयौ पति भणी केम वीतग० ॥११॥
इक दिनैं तिहां रहतां थकांजी नगर कोलाहल होइ ।
मस्तमातंग छूटौ तिकोजी झालि सकैं नही कोइ वीतग० ॥१२॥
तुरत मैं कबज कीधौ तिकोजी जस हूऔ माहरौ जोर ।
हुं रहुं हरखि गणिका घरेजी नित करैं भगति निहोर वीतग० ॥१३॥
वेस कहैं आज नृप आगलैंजी नाटक करिस मनरंग ।
तुम्ह पिण वैंसि देखौ तिहांजी आयनैं रायनैं संग वीतग० ॥१४॥
मैं कह्यौ हुं नही आवसुंजी ते गई नाटक काज ।
मैं जाण्यौ माहरैं कांमरौजी एह अवसाण छैं आज वीतग० ॥१५॥
नाटक देखिया सहु गयाजी भूपनैं गृह नही कोइ ।
हरिणनौ पुच्छ हरतां थकांजी देखता था जणा दोइ वीतग० ॥१६॥
तिण पुरुषे मुझ झालिनैंजी आणीयौ राज हजूर ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाटकरस रखे भंग ह्वैं जी मुझ बैंसाणीयौ दूर वीतग० ॥१७॥
वेसीया तुरत मुझ अटकल्यौजी एह तौ माहरौ मीत ।
रायमन किणहि विधि रीझवीजी छोडवुं तौ मुझ प्रीति वीतग० ॥१७॥

दोहा-

वेस विविध करि वेसीया हावभाव करि हित्त ।
राजादिक सहु रंजीया चंपकलो हैं चित्त ॥१॥
नृपति कहैं पुरनायिका हुं रंज्यौ लयलीन ।
जिके ताहरैं जोईयैं मांगि वसत तुं तीन ॥२॥
मांगैं गणिका प्रीतिमन इक पहिलौ वर एह ।
मांस लीयौ मृगपुच्छनौ तुरत छुडावौ तेह ॥३॥
वर बीजैं मुझ एह वर नही बीजासुं काम ।
त्रीजौ वर इण चालतां साथैं जास्युं साम ॥४॥
वर दीधा तीने नृपति नाटक परौ निवेडि ।
वेश्या आई निज घरे मुझनैं साथैं तेडि ॥५॥

ढाल- नवमी-

(नायक मोह नचावीयौ- एहनी-)

कपटवती ते कामिनी चितमैं आई चीतो रे ।
गणिका कहैं तुझ नारिनी चालि दिखावुं रीतो रे ॥१॥
कपटवती ते कामिनी- आंकणी ।
आवी उतरीया अम्हे उज्जेणी आरामो रे ।
रातैं हाथे खड्ग ले हुं आयौ निज धामो रे कपट० ॥२॥
ऊपरवाडैं ऊतरी पैंठौ मंदिर माहे रे ।
मुझ नारी परपुरुषसुं सूती दीठी बेहु रे कपट० ॥३॥
नही य खबरि का नीदमैं मैं हणीयौ ते जारो रे ।
छांनौ तिहांथी नीकली आयै बाग मझारो रे कपट० ॥४॥
जागी पापिणि जोईयौ मार्यौ किण मुझ मीतो रे ।
काम नही कूंक्यांतणौ निंदा हुवैं अनीतो रे कपट० ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खाड खाणीनैं गाडीयौ रंधाणीनैं पासो रे ।
ऊपर कीधौ ओटलौ नांखैं पडी नीसासो रे कपट० ॥६॥
मैं आवी गणिका भणी कह्यौ सगलौ अधिकारो रे ।
वेश्या कहैं माहरौ कह्यौ साच हूऔ सुविचारो रे कपट० ॥७॥
पूठौ आयौ प्रेमसुं राजगृही पुर ठामो रे ।
रंगैं वेश्यारैं रहुं करुं कुतूहल कामो रे कपट० ॥८॥
मातपितारैं मोहसुं आयौ वलि उज्जेणो रे ।
मन सूधैं सगला मिल्या हूआ अति हरखेणो रे कपट० ॥९॥
रातैं सूणहरैं आयौ निपटज हरखी नारो रे ।
अति मौडा क्युं आवीया हुं बोल्यौ तिण वारो रे कपट० ॥१०॥
कारण मैं जोईयो मांस किहांई न लद्धो रे ।
काम सर्यां विण तुझ कनैं आयौ नेह विलुद्धो रे कपट० ॥११॥
मन ऊपर लैं माहरी सरव करैं छैं सेवो रे ।
चूल्हा पासैं चौतरौ दिल सुध तेहिज देवौ रे कपट० ॥१२॥
वस्तु जिकाई वापरैं घरमाहे फलफूलो रे ।
पहिली तिणनैं चाढिनैं खांणौं पछैं कछूलो रे कपट० ॥१३॥
चरित देखि में चीतव्यौ देखुं इण रौष्यालो रे ।
वसत भली वपरांवता पहिली राखुं पालो रे कपट० ॥१४॥

दोहा-

मैं कहीयौ सुणि मानिनी हूई घेवर हुंस ।
मुझथी पहिली किणहिनैं देइस तौ तुझ सुंस ॥१॥
कर जोडी मोसुं कहैं नेह ऊपरि लैं नारि ।
मोहरै तौ मन सुद्धसुं भलौ तिको भरतार ॥२॥
घेवर छांटैं ते घरणि हुं पिण बैंठौ पास ।
थाली लेइ घडा कनैं ताकुं घेवर तास ॥३॥
ऊंन्हौ घेवर उतर्या मैं कहीयौ मुझ मेलि ।
बोलैं हाथ बली बली घडा ऊपरि द्यैं ठेलि ॥४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मान्यौ वैंण न माहरौ केहौ हठ कुनारि ।
चाढ्यौ पहिली चौतरैं गाड्यौ छैं कोई जार ॥५॥
चंडी सुणि रीसैं चढी हुं पिण नाठौ ऊठि ।
ऊकलतौ घृत लेहरौ नांख्यौ माहरैं पूठि ॥६॥
मातपिता घरि हुं गयौ दाधी माहरी देह ।
अधिकैं हेत उपाय करि सज्ज कीयौ ससनेह ॥७॥
मैं दीठा महिलातणा एहा चरित अनेक ।
वैंरागैं मन वालिनैं व्रत लीधौ सुविवेक ॥८॥
चीता आई ते दशा मांने तुं मंत्रीस ।
भणीयौ तेण भयातिभय कारण विसवावीस ॥९॥

ढाल-दशमी-

(मनगमतौ साहिब मिल्यौ- एहनी-)

संबंध च्यारांरा सुण्या धरतां इम ध्रमध्यानो रे ।
परभातैं हिव पारीयौ पोसौ अभयप्रधानो रे ॥१॥
उपासरासुं ऊठिनैं आयौ अभयकुमारो रे ।
आचारिजनैं वंदतां कंठैं दीठौ हारो रे पुण्य० ॥२॥
धन आचारिज शिष्य धन लोभ न धरैं लिगारो रे ।
तृणमणि सिरखा तेवडैं एहनौ धन अवतारो रे पुण्य० ॥३॥
पोसाना परतापथी मैं पिण लाधौ हारो रे ।
सहुनैं धरम फलैं सही आणैं जो इकतारो रे पुण्य० ॥४॥
दिल सुध सांभलि देसना ते दिन सत्तम जाणी रे ।
हार दीयौ श्रेणिक भणी अभयकुमारैं आणी रे पुण्य० ॥५॥
चित हरखी अति चेलणा हाथे आयौ हारो रे ।
बुद्धिइं अभयकुमार री सोभा कहैं संसारो रे पुण्य० ॥६॥
इक दिन अभयकुमारनैं कहैं श्रेणिक महाराजो रे ।
सहु पुत्रोमैं सकज(?) तुं लैं हिव माहरौ राजो रे पुण्य० ॥७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिव श्रेणिक राजा भणी बोलैं अभयकुमारो रे ।
मो आगैं श्रीवीरजी युं कहीऔ निरधारो रे पुण्य० ॥८॥
चरम उदायन राजऋषि दीक्षा लीधी सारो रे ।
आज पछैं नृप को नही लेस्यैं संजमभारो रे पुण्य० ॥९॥
राज न ल्युं तिण वासतैं तुझ वैंरागैं मन्नो रे ।
आपौ मौनैं आगन्या ज्युं चारित ल्युं तन्नो रे पुण्य० ॥१०॥
राजा कहैं जीवां अम्हे वसि तां लगि घरवासो रे ।
नयणे तुझ निहालतां अम्ह अति होइ उलासो रे पुण्य० ॥१॥

दोहा-

कुमर कहैं सुणि तातजी ए माहरी अरदास ।
दीक्षा हुम्कम किणैं दिनैं देख्यै ते परकास ॥१॥
राजा कहैं हुं जिण दिनैं जा जा कहि द्युं सीष ।
ते अनुमति जाणी करी तिण दिन लेजे दीख ॥२॥
अभय विचारैं एहवौ देखुं कोई दाव ।
हिव जोड्यौ ते किणविधैं पामैं व्रत प्रस्ताव ॥३॥

ढाल-इग्यारमी-

(गोठलस (सोरठ?) देसे सेत्रुंजैं हाली घरथी इक छकडन घाली रे गोठ० एहनी-)

चित चौखैं चेलणा राणी जिनधरमिणि जग सहु जाणी रे चित०
तिण समय अनैं तिण कालैं सबलौ पडैं शीत सीयालै रे चित० ॥१॥
पडतैं अतिसबलैं पालैं बहु नीला वनखंड बालै रे चित० ।
मुनि ऊभौ इक काउसग्गैं थिर थंभ ज्युं ध्यान अथगौरे चित ॥२॥
वीर वांदि नइ वलतां राणी वंद्यौ ते आदर आणी रे चित० ।
वांदी अपणैं घरि आवैं धन धन ते मनमैं ध्यावैं रे चित० ॥३॥
उणहिज दिन महलांमाहे सूती नृपसहित उठा हे रे चित० ।
रहीयैं इक हाथ उघाडैं जो रैं ठाठरीयौ जाडैं रे चित० ॥४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडैं आज तिको सबलौसी हिव ते किम करतौ होसी रे चित० ।
राणी कही वात सभावैं भूपतिरैं मन भ्रम आवैं रे चित० ॥५॥
इण कुलटा कुण चीत स्यौ धरि हेत नवौहि ज धार्यौ रे चित० ।
मन राखी रीस प्रभातैं जिनवरनैं वांदण जातैं रे चित० ॥६॥
कह्यौ अभयकुमारनैं तेडी फूंकि देज्यो अंतेवर मैंडी रे चित० ।
कहि नृप जिनवंदण पहुतौ मनमांहि विमासैं मुहतौ रे चित० ॥७॥
राजा कह्यौ किणहिक रीसैं पिण वात अघटती दीसै रे चित० ।
जूनौ सूनौ घर जालैं नृपनी आज्ञा पिण पालै रे चित० ॥८॥
वीरजी कहैं उपदेशवाते चेडानी सतीयां साते रे चित० ।
राजा जाण्यौ सुणि वाणी मैं भ्रांति अणहुंती आणी रे चित० ॥९॥
ऊठ्यौ राजा ततकालैं जाण्यौ रखे अंतेउर जालैं रे चित० ।
धुखतौ दीगै तिण धूंऔ नृप जाणैं अनरथ हूऔ रे चित० ॥१०॥
आवंतौ अभयनै दीठौ कह्यौ जा जा परहौ अदीठौ रे चित० ।
अंतेउर कुशले राख्यौ भलौ वचन तुम्हे मुझ भाख्यौ रे चित० ॥११॥
मुझनैं कह्यौ थौ महाराजा जिण वेला कहां तुं जा जा रे चित० ।
तिण वेला दीक्षा लेजे ते लाधौ वचन सहेजे रे चित० ॥१२॥
धन धन ते चेलणा राणी जिणनैं श्रीवीर वखाणी रे चित० ।
शुभ जिन धर्मशील अमोलैं **कीरतिसुंदर** सहु बोलैं रे चित० ॥१३॥

दोहा-

कुमरतणैं अति आग्रहैं अनुमति दीधी राय ।
आडंबर करि अति घणा मनमैं हरख न माय ॥१॥
वीर जिणेसर हाथसुं व्रत ल्यैं अभयकुमार ।
नंदामा पिण तेहसुं संयम लीधौ सार ॥२॥
पांच वरस दूषणरहित पाली संयम भार ।
करि संलेखन ऊपनौ अनुत्तर इक अवतार ॥३॥
सुरना अतिसुख भोगवी चविनैं नरभव पामि ।
चारित पाली मुगतिपुर लहसि उत्तम ठाम ॥४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल-१२-

(आज निहे जौ दीसै नाहलौ - एहनी-) धन्यासिरी रागे-

विधिसुं पांचे मुनिवर वंदीयैं सिव सुव्रत सुखकार ।
धन धन धन्नौ नें जोनकजती अभयकुमार अणगार विधिसुं० ॥१॥
संबंध छोड्यौ जिण संसारनौ वैंरागैं मन वालि ।
सुमति-गुपतिधर संवेगी सदा पंचमहाव्रत पाल विधिसुं० ॥२॥
जीता जिण बावीस परीसहा दयावंत सुखदाय ।
दसविध साधुधरम दीपावता तप करि सोखी काय विधिसुं० ॥३॥
अंग इग्यार अरथ अवगाहीया निरमल मन जिम नीर ।
चाल्यौ पिण ध्रमथी चूकौ नही मेरु तणी परि धीर विधिसुं० ॥४॥
चार कषाय निवार्या चित्तसुं सागर ज्युं गंभीर ।
सोमनिजर परमादर हित सही ताक्यौ भवनौ तीर विधिसुं० ॥५॥
श्रीश्रेणिक नैं अभयकुमारनौ चरित वडौ विस्तार ।
तिहांथी चिहुं साधांनी चौपई कहीं वैराग विचार विधिसुं० ॥६॥
मन मांन्या मेवा पकवानना अधिक भर्या अंबार ।
सहुको रुचि सारु जीमी सकैं ए तिणविध अधिकार विधिसुं० ॥७॥
संवत **सतरैं गुणसठैं समैं जयतारणिपुर** जाण ।
चौमासैं **श्रीजिनचंद्रसूरिजी** भट्टारक कुल भाण विधिसु० ॥८॥
भट्टारकीया खरतर जस भला शाखा जिनभद्रसूरि ।
साधुकीरति साधुसुंदर सारिखा पाठक विद्यापूर विधिसु० ॥९॥
विमलकीरति जगि विम्मलचंद ज्युं विजयहरख सुखदान ।
श्रीधर्म्मवर्द्धन राजैं सद्गुरू पाठक सुगुणप्रधान विधिसु० ॥१०॥
गुण साधांरा मन सुध गावतां सहु सुख लहीयैं सार ।
कीरतिसुंदर ह्वैं कांन्हजी संघउदय सुखकार विधिसु० ॥११॥

इति श्री अभयकुमारादिपञ्चसाधूनां चतुःपदी समाप्ता ॥
लिखिता वा० कीर्त्तिसुन्दरगणिना श्रीरतलाममध्ये ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केटलाक कठिन शब्दोना अर्थ

शब्द	अर्थ	गाथा क्रमाङ्क
साधांरा	साधुओना	प्रथम ढाल-दुहा - २
कर्मनिर्जरा	कर्मनो नाश	,, ,, २
समकित	देव-गुरु-धर्म प्रत्ये श्रद्धा	,, ,, २
सुध	शुद्ध	,, ,, २
समवसर्या	पधार्या	प्र. ढाल - ३
पाहृय	पाये-पगे	,, ,, ३
पंचाभिगमन	जिनभगवान के गुरु पासे जतां आदरवाना ५ नियमो : सचित द्रव्यनो त्याग, अचित्त द्रव्यनो अत्याग, एकाग्रता, एकशाटिक उत्तरासंग, प्रभु दर्शन थतां बे हाथ जोडवा.	,, ,, ३
निकाचित कर्म	जे कर्म अवश्य भोगववुं ज पडे.	,, ,, ७
केवली	केवलज्ञानी, त्रणे कालना भावने जोनारा, जाणनारा,	,, ,, १४
तडकीनैं	गुस्से थईने	,, ,, १७
हुंस	इच्छा-होंश	,, ,, ५
भांड्या	फेंक्या	बीजी ढाल- ३
भडकाई	भटकाया	,, ,, ३
सोहरा	सुखी	,, ,, ९
जातीसमरण	पूर्वभवनुं ज्ञान	,, ,, ११
अठ पहुरी पोसौ	श्रावक जीवननी क्रिया (२४ कलाक माटे सावद्य क्रिया त्यागी साधु जेवुं जीवन) (आठ प्रहरनो पौषध)	त्रीजी ढाल दुहा-६
डोकरडी	वृद्धा	,, ,, २
खावसां	जमीशुं	,, ,, ३
पोषधशालो	श्रावकने धर्म आराधना करवानुं स्थान (पोषाल)	,, ,, ४
उपासरा	जैन साधुने धर्म आराधना करवानुं	,, ,, ९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	स्थान (उपाश्रय)	
निसही	सावद्य क्रिया निषेध (जिनमन्दिर-उपाश्रयमां प्रवेश करता आ शब्द बोलाय छे.)	" " ९
दरव उपावण	धन उपार्जन	चोथी ढाल दुहा - २
थांपणमोसा	गिरवे मूकेली वस्तु पडावी लेवी	" " ३
बाकौ फाडि	मोंढु फाडीने	चोथी ढाल - १०
घिरत	घृत (घी)	" " १२
खांतिसुं	खंतथी	" " १२
प्रघल	सुन्दर	" " १२
वनारतां	कापता	" " १७
संवेग	मोक्षनी इच्छा	" " २२
हलफल्यौ	व्याकुल थवुं	पांचमी ढाल दुहा-१
थानक	उपाश्रय	" " २
तड्यां	छोड्या पछी	" " ९
हासौ	उपहास	पांचमी ढाल-१
थारौ	तारो	" " ७
सांझैं	सांजे	" " १०
आज्यो	आवजे	" " १०
बैंसाण्यौ	बेसाड्यो	" " १३
पगरी पानही	पगनी मोजडी	" " १४
पाथरही पथलाय	पथारी पाथरवी	" " १५
छानीठाम	एकान्त स्थान	" " १७
संबाहि	फेलावीने	" " १८
थेहिज	तुं ज	" " ३
गुडाय	नाख्यो	" " ६
वखतनैं जोर	भाग्यवशे	" " ७
सरास	शिथिल (?)	" " ८
अमरस	क्रोध - अमर्ष	" " ८
वाहर	सेना, टुकडी	" " ११
सालू	साडी	" " १२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ठौर	स्थान	''	''	१५
वंटावैं	भाग पडाववो	सातमी	ढाल-	४
आपड	आंबवुं	''	''	७
टछ्कौ	टुकडो	''	''	१०
साचोवायैं	(?)	''	''	१४
इकतारी	एकाग्रता	''	''	१५
पाउ	पग	आठमी	ढाल-	३
मुहतौं	महेता-मन्त्री	,,	,,	३ (दुहो)
कूकवाजी	बूमाबूम, चीसाचीस	''	''	७
तिकोजी	तेनो	''	''	८
निहोर	बहु, घणी	''	''	१३
कूक्यांतणौ	चीसाचीस करवानो	नवमी	ढाल-	५
खाड खणीनैं गाडीयौ	खाडो करीने दाट्यो	''	''	६
सूणहरैं	शून्यघर	''	''	१०
चाढिनैं	चढावीने	''	''	१३
रौष्यालो	गुस्सावालो	''	''	१४
सुंस	सोगंद	दशमी	ढाल-दुहा-	१
दाधी	दाझी-बळेली	''	''	७
विसवावीस	विश्वमां श्रेष्ठ	''	''	९
दीक्षा	संसारत्याग	दशमी	ढाल-	९
आगन्या	आज्ञा, अनुमति	''	''	१०
हुम्कम	आज्ञा, अनुमति	अग्यारमी	ढाल-दुहा-	१
ठाठरीयौ	ठर्यो	अग्यारमी	ढाल-	४
धुखतौ	उठतो-धखतो	''	''	१०
गुपतिधर	मन,वचन अने काया ए त्रण गुप्तिने धरनारा	बारमी	ढाल-	२
बावीस परीसह	सहन करवा योग्य क्षुधा-पिपासा आदि	''	''	३
दसविध साधुधरम	क्षान्ति मृदुता आदि यति धर्म	''	''	३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि मालकृत

श्रीमहावीरपारणास्तवन

सं. मुनि सुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ

प्रभु वीरना जीवनचरित्रमां भावदान विषय उपर जीरण शेठ तथा पूरण शेठनुं दृष्टान्त घणुं ज प्रचलित छे. प्रभुनुं चौमासी तपनुं पारणुं कोणे कराव्युं ? कया द्रव्यथी कर्युं ? इत्यादि प्रसंगने प्रस्तुत कृतिमां कविओ खूब ज सुन्दरताथी वर्णव्यो छे. श ने बदले स नो प्रयोग अने अनुस्वारोनो छूटा हाथे करेलो प्रयोग अहीं ज्यां त्यां दृष्टिगोचर थाय छे. गाथा २९मां दान शब्द लहियानी भूलथी रही गयो लागे छे. गाथा-३० मां ''तान दी(दि)यों जीणें वरनेजी''ने बदले ''दांन तणी अनुमोदनाजी''आ पाठ नेमि विज्ञान-कस्तूरसूरिभण्डार (सुरत)नी प्रतमां जोवा मळे छे. जे वधु सुन्दर लागे छे.

लोंकागच्छनी परम्परामां १७मा सैकाना उत्तरार्धमां अने १८मा सैकाना पूर्वार्द्धमां मुनि माल नामना प्रसिद्ध कवि थया. जेमणे १८१०मां आषाढाभूति चोपाई, १८५५मां एलाचीकुमार छ ढालियुं, १८२२मां इषुकार-कमलावतीनुं छ ढालियुं, छ भाईनो रास इत्यादि पद्य साहित्यनी रचना करी छे.

बीजा एक मालमुनि नामना कविओ १६६३ पूर्वे अंजनासुन्दरीनी चोपाई रची. खास तो शब्द (माल-मुनि) ना स्थान परिवर्तन थता सर्जाती मूंझवणनो आ एक सुन्दर दाखलो छे.

प्रस्तुत स्तवनमां कर्ताना नामोल्लेख सिवाय गच्छ-गुरु इत्यादि कोई पण माहिती मळती नथी. कर्तानुं नाम 'मुनि माल' एम ज समजीओ तो ते लोंकागच्छनी कृति गणाय, छतां विद्वानो विशेष प्रकाश पाडी शके.

प्रस्तुत कृति जीरावलाजी भण्डार (घाटकोपर) स्थित हस्तप्रतभण्डारनी छे. बीजी प्रत नेमिविज्ञान-कस्तूरसूरिजी भण्डार सुरतना संग्रहनी छे. परंतु अशुद्ध होवाथी मुख्य पाठान्तरो ज नोंध्या छे. प्रत आपवा बदल भण्डारना व्यवस्थापकोनो आभार.

—X—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीअरिहंत अनंत गुण, अतिशयपूरण गात्र,
मुनि जे नांणी संयमी, ते उत्तम कहिइ पात्र ॥१॥
पात्र तणी अनुमोदना, करतो जीरणसेठ,
श्रावक अच्युत गति लहें, नव ग्रैवेकें हेठ, ॥२॥
दश चोंमासां वीरजी, विचरता संजमवास,
विशालापुरि आवीआ, इग्यारमें चोमांस, ॥३॥

ढाल–

चोमासें इग्यारमेंजी, विचरता साहसधीर,
विशालापुर आवीआ, स्वामी श्रीमहावीर, ॥४॥
जगतगुरु त्रिशलानंदनजी (आंकणी), भलें में भेट्या श्रीजी(जि)नराय,
सखीरी ! चोक वधावो आय, मेरे भाग अनोपम माय, जगत... ॥५॥
बलदेवनो छें देहरोजी, तिहां प्रभु काउसग्ग कीध,
पच्चक्खाण चोमांसि(सी)नुंजी, स्वामि(मी)अे तप लीध, जगत... ॥६॥
जीरणसेठ तिहां वसेजी, पाले श्रावकधर्म,
आकारे तिणे ओलख्याजी, जांणें धर्मनो मर्म, जगत... ॥७॥
आज छें उपवासीआजी, स्वामी श्रीवर्धमान,
काल सही प्रभु जीमस्येंजी, स्वहत्थें देस्युं दांन, जगत... ॥८॥
जीरणसेठ इम चिंतवेजी, सफल हुस्यें मुझ आस,
पक्ष मास गणतां थकाजी, पूरण थयुं चोमास, जगत... ॥९॥
सामग्री सवी(वि) आहारनीजी, सेहजें हुइ तेणी वार,
प्रभुनो मारग पेखतोजी, बेंठो घरनें बार, जगत... ॥१०॥
घर आव्या छें पाहुणाजी, नुंतर्या अेक वार,
प्रभुजी कीहां रे पधारस्येजी, में नुहतर्या वारोवार, जगत... ॥११॥
पछें करस्युं पारणुंजी, हुं प्रभुने प्रतिलाभ,
होयें मनोरथ अेहवाजी, तो ही न वरसें आभ, जगत... ॥१२॥
अवसरें उठ्या गोचरीजी, श्रीसिद्धारथपुत्र,
विशालपुर आवीआजी, पु(पू)रणधरिं पहुत्त, जगत... ॥१३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्याती जांणें नहींजी, जंगम तीरथ एह,
दाशी(सी) प्रतें ते ईम कहेंजी, कछुइक भी(भि)क्षा देह, जगत...॥१४॥
चाटु भरीनें बाकुलाजी, आणी प्रभुजीनें दीध,
नी(नि)रागी प्रभु ते लि(ली)आजी, ती(ति)हां प्रभु पारणुं कीध,
जगत...॥१५॥
देव वजावें दुंदुभीजी, जय जय बोलें कर जोड,
हेमवृष्टि तिहां थइजी, साढीबारह करोड, जगत.... ॥१६॥
राय लोक सहु इम कहेंजी, धन धन पूरणसेठ,
उ(ऊं)ची करणी तें करीजी, बीजा सहु तुज हेठ, जगत.... ॥१७॥
राय कहें ते सुं(शुं) दी(दि)योजी, पारणो कियो वीर,
पूरणसेठ तव इम कहेंजी, में वोहरावी खीर, जगत.... ॥१८॥
जीरणसेठ तव सांभलीजी, वाजी दुंदुभीनाद,
अन्नथी कियो प्रभु पारणोजी, मन थयों विखवाद, जगत.... ॥१९॥
हुं जगमें वडो अभागीयोंजी, घेंर न आव्या स्वांमि ।
कल्पवृक्ष किम पांमीयेजी, मारुंमंडल ठाम, जगत.... ॥२०॥
केता मनोरथ में कीयाजी, तेता रह्या मनमांहि,
जिम जिम निरधन चिंतवेंजी, तिम तिम निःफल थाइ, जगत... ॥२१॥
प्रभुजी कीयों तिहां पारणोजी, कीधो अन्यत्र विहार,
आव्या पास संतानीयाजी, तीहां मुनि केवळधार, जगत...॥२२॥
मेरे नगरमां कोण छेजी, पुण्यवंत जशवंत ?
कहें केवली आज तो जी, जीरणशेठ महंत, जगत... ॥२४॥
राय कहे केण कारणेजी, जीरणसेठ महंत ?
दान दियों जिणें वीरनेजी, ते पुरण यशवंत, जगत... ॥२५॥
राय प्रतें कहे केवलीजी पूरण दीधोंदान,
हेमवृष्टि तेहनें हुंइंजी, अवर न कोई प्रमान, जगत... ॥२६॥
राय जीरण वधावीयोजी, अधिक मांन सनमांन,
मुखि नगरमां थापीयोजी, जोयों पुन्य प्रमाण, जगत... ॥२७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अेक घडी सुरदुंदुभिजी, जो न सुणत कान,
तो ते जीरण लेतो सहीजी, उत्तम केवळज्ञान, जगत... ॥२८॥
देवलोक वर बारमेंजी, जीरण घाल्या बंध,
विण [दांन] दीधेंथी फल्योजी, उत्तमस्युं संबंध, जगत... ॥२९॥
दांन दीयों सुपात्रनेंजी, निःफल कदीय न होय,
दांन दीयों जीणें साधुनेंजी, जीरण ज्यूं फल जोय, जगत... ॥३०॥
इम जाणी अनुमोदनाजी, दांन सुपात्र रसाणी
दांन दीयों जीणें वीरनेंजी, ते नमें **मुनि माल**, जगत... ॥३१॥

॥ इति श्रीमहावीरपारणास्तवनं सम्पूर्णः (म्) ॥श्री॥

—x—

आवरणचित्र-परिचय

प्रथम अने चतुर्थ मुखपृष्ठ पर छापेल चित्रो प्रसिद्ध 'मधुबिन्दु'ना दृष्टान्तनां चित्रो छे. वडनी वडवाई पर लटकतो पुरुष, वड परना मधपूडामांथी टपकतां मधनां टीपांनो रसास्वाद लेवामां एवो तो लोलुप अने तन्मय छे के ते वडवाईने बे उंदर कापी रह्यां छे, ते वृक्षने उखेडवा हाथी मथी रह्यो छे. तेना पग नीचे ऊंडो कूवो छे ने तेमां ४ नाग-नागण फूंफाडा मारतां ते पडे तेनी प्रतीक्षामां छे, ते बधांनी तेने कशी ज परवा नथी. वळी, ऊपर ओचिंता आवी चडेल दैवी विमानवाळां तेने बचाववानुं कहे छे तो ते प्रत्ये पण ते दुर्लक्ष्य सेवे छे. संसारनी विचित्र के वरवी वास्तविकतानो बोधप्रद परिचय आपती आ रूपक कथानां आ चित्रो छे. प्रथम चित्र १६मा शतकनी हाथपोथीनुं छे. बीजुं चित्र जैन देरासर (लक्ष्मीपुरी, कोल्हापुर) नी भींत पर आरसमां थयेल सुरेख 'इनले वर्क'नी तसवीर छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रण लघु पद्य रचनाओ

कर्ता : वाचक विजयशेखरजी

सं. साध्वी समयप्रज्ञाश्री

श्रीनेमिनाथ अने महासती राजीमतीनो तेमज स्थूलिभद्रजी अने गणिका कोशानो प्रणय ए मध्यकालना जैन कविओनो विशिष्ट काव्य-विषय रह्यो छे. आ बन्ने युगलने केन्द्रमां राखीने अढळक काव्यो रचायां छे तेवुं जाणवा मळे छे.

अहीं आ विषयनी ३ अप्रसिद्ध लघु रचनाओ तैयार करी आपवामां आवेल छे. प्रथम रचना 'नेम-राजुलना बारमास' छे. बीजी रचना 'श्रीस्थूलिभद्रनुं चोमासुं' छे. अने त्रीजी रचना 'नेमगीत' नामे छे.

त्रणे रचनामां नायिका एटले के राजीमती अने कोशानो प्रेम, विरहनी व्याकुळता अने छेवटे वैराग्यनी के धर्मनी प्राप्ति ए रीते वर्णन जोवा मळे छे. त्रणेना कर्ता वाचक विजयशेखरजी छे, जेमनो नामोल्लेख दरेक रचनामां छेवटे जोवा मळे छे.

आ रचनाओनी ३ पानांनी प्रत 'कच्छ कोडाय जैन महाजन भण्डार'मां विद्यमान छे, जेनी मने आपवामां आवेली जेरोक्स नकल उपरथी में मारी अल्पबुद्धिए आ सम्पादन करेल छे. भूलचूक के त्रुटि सुधारी लेवा सौने विनंती.

श्रीनेम-राजुलना बारमास

॥ राग-गउडी ॥

काहेकूं नेम रीसाना,
देखत मेरउ चित्त लोभाना,
सुणउ कबू वीनती नाहा,
लेहूं नवला योवन लाहा ॥१॥ का० आंकणी ।

नीकी बराति नेम राजा,
हय गय रथ साथि दिवाजा;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तोरणि आए किउं प्यारे,
पसू-पीरि हरी सिधारे. ॥२॥ का०

प्राणप्रिया किउं जीजइ,
कामबानि करी तन छीजइ;
हठ हठ न करउ रोस वारउ,
आठ भवकी प्रीति संभारउ. ॥३॥ का०

छारुंगी तन पालव मींता
यादव-करि आवि न चींता;
पीया होतउ पूरिन-आसा,
सखीयन मइं काहा करउ हासा. ॥४॥ का०

कबि हुं अबला रीसावि
सो तउ मींल सुजान मनावि
बिन रस चार्खि बिरंगी
नांही मूढ गमारि हुं चंगी. ॥५॥ का०

जानी मइं तेरी चतुराई,
चकवी दोरि परि फिरि जाई;
भए रे बिं(वि)देसी कंता,
मोहन विन दुःख अनंता. ॥६॥ का०

अब सखी आयउ हि **सावन**,
मेरउ अंगनउ कीजि पावन;
मधुरा वरसइं मेहा,
कांई दीजि मोही छेहा. ॥७॥ का०

अब सखी **भाद्रव** गाजि,
मेह-झडि मंडी पुहवी साजि;
बीजरी चिहुं दिसिइ चमकि,
पीउ पासि बिना हीउं कमकि. ॥८॥ का०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब सखी सुंदर **आसो**,
पूरण चंद गयणे उल्लासो;
सरोवरि कमल बहु बिकसइ,
दीवाली कीजि मन हरसे. ॥९॥ का०

अब सखी आएउ **काती**
अरदास करूं गुणि राती;
अन्न न अन्न न भावइं,
कोई कंत सलूणउ मेलावि. ॥१०॥ का०

अब सखी **मागसिरि** भोगो,
काया कोमल साधिउ योगो;
मिश्री गोरस पीजि,
मिली जोडी तिसी फलीजि. ॥११॥ का०

अब सखी **पोस** मइं पोसो,
मोही कूडउ न दाखि दोसो;
दउहिली राति न जाइ,
तारा गणतां मोही विहाइं. ॥१२॥ का०

अब सखी **मांह** कराला,
किउं रहि घरि एकली बाला;
हींम पडि सांत ते वाइ,
बिरहणि कमल कुमलाइ. ॥१३॥ का०

अब सखी **फागुण** रमीइं,
होली खेली दुख सब गमीइं;
ऊडि ऊडि लाल गुलाला,
मुहर्या आंबा अति रसाला. ॥१४॥ का०

अब सखी **चैत्त** मइ चेतो,
करउ करुणा सुख लहुं तेतइं;
कहुंउ कहुउं कोकला बोलइं,
दावानल बिरहउ खोलइ. ॥१५॥ का०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब सखी नेम **विसाखइं**,
सिद्धि रमणी सिउं चित्त राखइं;
चूया चंदन तपि गाढा,
आयउ स्यामसूंदर बोलइ टाढा. ॥१६॥ का०
अब सखी **जेठा** मासे,
बिन काजि फिरि उदासे;
सूरध पीलू झलवाइ,
क्रीडा कुसमकी करउ मन भाइं. ॥१७॥ का०
अब सखी **आसाढ** सोहि,
गयणे माधव जनमनमोहि;
प्रिउ प्रिउ बोलि बाबीहा,
नेमना विन जाइ दीहा. ॥१८॥ का०
दुःख वीसारन राजे,
पीछई मिलन कि काजे;
श्री गि[र]नारिइ प्रीयु पायउ,
पेखी नयनइं अतिहिं सुहायउ. ॥१९॥ का०
राजुलि राणी सोहागिनि,
करी यदुपति अपनी रागिनि;
नयक न मायउ- न मोहिइ (?)
दोय सिवमिदरिं आरोहइं. ॥२०॥ का०
अजरामर पद सारा,
दोय भोगवि सुख सुविचारा;
मूरति की बलिहारी,
सिवादेवी सुत ब्रह्मचारी. ॥२१॥ का०
नेम राजुंलि पालिउ नेहा,
तिम चतुरा हुंयो गुणगेहा;
राखउ जिनजी सिउं रंगा,
नाम निरमल हि जलगंगा. ॥२२॥ का०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेकशेखर गणिराया,
लही मोज नमू निति पाया;
विजयशेखर गणि गावि,
बारमासे आनंद पावि. ॥२३॥ का०

इति श्री नेमनाथ-राजेमती बारमास संपूर्णः ॥

श्रीस्थूलिभद्रनुं चोमासूं

॥ राग - मल्हार ॥

सुंदर पाडलीपुर सिरोमणि, नंद नरपति हेंव,
सिकडाल मंत्रीसर घरइं, लाडिली लाछिलदेवे,
तास कूखइ-सरोवर-हंसलइं, चित वालिउ भोग-विलासि,
सिर धरी गुर-सीख आवीयउं रहिउ कोसि-मंदिर चउमासि ॥१॥

सखी आउरे मेरे प्रीतमकूं वेगि वधावि,
हींडोलणि सोहि थूलिभद्र रिषिराज. आंकणी०

चिहुं दिसइं चमकि दामिनी, कोकिला करती सोर,
गगनि रजि मेघ उनयउ, मोदि बोले मोर,
प्रीउ प्रीउ चवि मुखि बाबीहा, विरहणिकुं वधिउ साल,
आसाढि आस्या पुरउ नाहा, कठिन ए वरिषा-काल. ॥२॥ स०

खीण झडि मंडि झरमरि वरसतउ, घनघटा करि अति घोर,
सर भरियां गिर-नीझरण श्रवइं, रतिरायनूं बहु जोर,
हरीयालडी पुहवी भई, विस्तार वेला वास,
मालती केतकी महिमहि, सनेही **श्रावण** मास. ॥३॥ स०

भाद्रवु भोगी मझ दहि, योवन वहि जलधार,
परदेस पीआ पंथीया, पदमनि प्रेम संभारि,
सारंग राग मल्हार सारउ, गाईयइ दोइ गेलि,
पूरवणी कंता प्रीति पालउ, मोहन रहउ मन मेलि. ॥४॥ स०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निरमल नीर **आसोईयइ**, चाहउ चांद्रणी निसि चंद,
सरल विकसइं पोयणी, राजहंस तरइं आनंदि,
कामिनी सरिसी करउ क्रीडा, दीपजोति झमालि,
लील कीजइं लाहउ लीजइं, लखिमी पूरण लाल. ॥५॥ स०
कुतिकी **कातिक** मासि मोरउ, पूरवउ प्रभु कोडि,
मदन मूरति अवतारिउ, रसिक रितु मोर,
योग युगतिइ रमणि तारी, पुहतउ मुनि गुरु पासि,
विजय शेखर गाइ वाचक, थूलिभद्र थिर जास. ॥६॥ स०

इति श्री थूलिभद्रनुं चोमासूं संपूर्ण.

श्रीनेमगीत

॥ राग- गउडी ॥

नेम दीजइं सुरंगी चूनरी, ओढिगी राजुलि नारि रे,
प्रीति ठामि एत हठ क्या कारउ, कंता आई काज मनोहारि रे. ॥१॥ ने०
कारीगरी नखसी बिं दुला, नीकी नवरंगी वणी भाति रे;
जरीनउ मुगताफलि जरी, मनमोहन एती खांति रे... ॥२॥ ने०
अपराध विना ति जायइ नही, देखउ चित अंतरि सांइं रे;
तरकि भरकि डरीयइं नही, कुन सीचसी कामनि कांइ रे... ॥३॥ ने०
पसूया मि कूडउ दाखीयइ, तजी रोती अबला बाल रे;
पुरुषारथ थइं एहु नइही भलउ, करउ सार जू नेम दयाल रे... ॥४॥ ने०
बलि जाउंगी कछू छूझवुं, मेरे मन एही उछाह रे,
योवन-वारी महिकी फली, फूल लागे लेहु लाह रे... ॥६॥ ने०
राजा समुद्रविजय के लाडेले, सामलउ ब्रह्मचारी सामि रे,
मिले **विज(य)शेखर** दोकु प्रीतमां, रंग-मुहलि मुगति अभिराम रे...॥७॥ ने०

इति श्री नेमगीतं ॥

—X—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The Jain Versions of Rāmāyaṇa
(With Special Reference to Vimalasūrī Guṇabhadra and Śīlāṅka)

Dr. Nalini Joshi

Introduction:

There is no need to highlight the influence of Vālmīki Rāmāyaṇa on further Indian Literature and Culture. Though hundreds of Brahmanic, Jaina and Buddhist versions of Rāmāyaṇa are available, Vālmīki's position as Ādikavi is unanimously accepted. Some stray different traditions about the chief characters may be prevalent in the society, but Vālmīki was the first to present it in Epic form. For this paper, the date of the available Rāmāyaṇa of Vālmīki is assumed as 3rd Century B.C. According to the prominent scholars, of course the Bālakāṇḍa and Uttarakāṇḍa is spurious and there are some additions, here and there.

Scope of the Research Paper :

Though there is a long tradition of Rāmakathā among Jainas, here I have purposefully selected a few of them. Vimalasūri's Paumacariya is the first Jain Rāmāyaṇa written in Jain Mahāraṣṭrī or Ārṣa Prakrit in 3rd Century A.D. We find both Śvetāmbara and Digambara elements in Vimalasūrī. Some of the scholars have opined that Vimalasūrī represents Yāpanīya Sect, reconciling Śve. and Dig. views. Raviṣeṇa's Skt. Padmacarita (8th Cen. A.D.) is almost the replica of Prakrit Paumacariya of Vimalasūrī. Raviṣeṇa has presented his Rāmāyaṇa without mentioning the indebtedness of Vimalasūrī, added some detailed descriptions and his Dig. attitude is quite clear. Apabhraṁśa Paumacariu written in the later half of the 8th Century by Svayambhū, who was a householder (Śrāvaka), almost imitates Vimalasūrī and Raviṣeṇa. He mentions Raviṣeṇa but neglects Vimalasūrī probably due to the sectarian bias.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Hemacandra follows the same tradition of Ramakatha in his Skt. work Triṣaṣṭiśalākāpuruṣacarita written in the 12th Century with few additions. So, when we consider Vimalasūrī, all the abovementioned Rāmakathās are covered.

The Rāmacarita presented in Skt. Uttarapurāṇa (a part of Ādipurāṇa) by Guṇabhadra (9th Cen. A.D.) differs a lot from Vimalsūrī and being a Digambara, presented his Rāmakathā totally in new manner. The scope, characterization, incidents and style differs from that of Vimalasūrī. Pandit Āśādhara (13th Cen. A.D.) a Dig. Jaina householder presents Guṇabhadra's Rāmakathā in a very compact manner in his Triṣaṣṭismṛtiśāstra.

Śīlāṅka (9th Cen. A.D.) presents a very small story of Pauma (Rāma) in his Jain Mahārāṣṭrī Prakrit work Cauppannamahāpurisacariya. It is very remarkable that his account of Rāma is mostly a brief summary of Vālmiki Rāmāyaṇa.

Daśaratha Jātaka presents the story of Rāma Paṇdita in nutshell. This story, written in Pāli, contains some queer Buddhist elements unlike Brahmanic or Jain versions.

Thus the observations and remarks in this research paper are based on the Rāmakathās of (i) Vimalasūrī, Raviṣeṇa, Svayambhū and Hemcandra, (ii) Guṇabhadra and Āśādhara, (iii) Śīlāṅka and (iv) Daśaratha Jātaka.

The Method followed in the Paper :

In the first place, the basic similarities in all Jain versions are pointed out. The searchlight is thrown on the typical Jain elements.

In the second part, the striking differences among these Jain versions are noted in the light of some important points.

In the last part, conclusive remarks are presented on the basis of the abovementioned observations.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(A) Common Jain Elements in all Jain Versions of Ramakatha

(1) Tradition of 63 Śalākapuruṣas :

All the authors of Jain Rāmakathā claim that Rāmakathā was handed down to them right from Lord Mahāvīra through succession. Jain tradition has created a format of 63 illustrated human heroes, of course in spiritual perspective. These are designations and all of them occur in each Avaṣarpiṇī and Utsarpiṇī of the time-wheel (Kālacakra). Rāma or Padma is the 8th Baladeva (Balabhadra or Balarāma), Lakṣmaṇa is the 8lh Vāsudeva (or Nārayaṇa) and Rāvaṇa is the 8th Prati-Vāsudeva of the present Avasarpiṇi.[1] Hanuman is enumerated as among the 24 Kāmadevas but not included in the 63 Śalākāpuruṣas in the Jaina Purāṇa perennis. According to this format, all Jaina authors agree that Lakṣmaṇa killed Rāvaṇa. Both of them were born as infernal beings immediately after their birth as human beings. After a long span of time, after having gone through many cycles of birth and death, they will attain Liberation. Padma and Hanuman had attained Nirvāṇa while Sītā had attained heaven.

(2) Polygamy :

In the format of Śalākāpuruṣas, Baladevas and Vāsudevas necessarily possess thousands of wives. All Jain authors have depicted that Rāma, Lakṣmaṇa and Rāvaṇa possessed thousands of wives. In Valmiki Rāmāyaṇa, very few males are monogamists. The citations like रामस्य परमाः स्त्रियः (Vālmīki Rā. 2.8.12) may have inspired Jain authors to picturise Rāma as polygamist. 'The vow of complete celibacy[1] is greatly honoured in Jain monachism but still Hanuman is Kāmadeva and householder, he possesses many wives.

(3) Vānaras and Rākṣasas :

The Jain authors have depicted Vānaras and Rākṣasas as Vidyādharas or Khecaras, a variety of sub-human beings possessing various lores like Ākāśagamana etc. Vimalasūri has

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

given totally new meanings of the words, viz. Vānara and Rākṣasa.[2] Jain authors feel that Vālmīki's depiction of Vānaras and Rākṣasas is unbelievable and irrational.

(4) Doctrine of Karman and other Jain Tenets :

Doctrine of Karman is the backbone of Jain Philosophy. According to this theory, every misery and happiness is connected with the rise of the fruits of good and bad karmans which are performed previously. Most of the important incidents in Rāmakathā are explained in the light of Karmasiddhānta. While explaining the painful separation of Padma and Sītā [3], the agonies in the life of Añjanā [4], the infatuation of Bhāmaṇḍala towards Sītā [5], the Jaina authors have not missed the opportunity to elaborate the doctrine of Karman. When Sītā embraces Dīkṣa, she explains the theory of Karman in nutshell.[6] In all Jain Rāmakathās, every now and then, we find the keywords of Jainism like Vairāgya, Saṁyama and Dīkṣa. During the preaching of Munis, the conduct of layman and monk is narrated at length.

(5) Ascetics and their dwellings :

In Vālmīki Rāmāyaṇa we find several names of sages, ascetics, their dwellings (i.e. Āśramās), their preaching and giving out different lores and weapons to Rāma and Lakṣmaṇa. In the Jain versions, we see complete Jainification in this respect. Every now and then we find the descriptions of Jain Sādhus, Munis, Anagāras and Kevalins engaged in giving religious sermons, offering bigger and smaller vows to householders. There are Jinamandiras, Chaityas and places of pilgrimage. Padma, Sītā, Hanuman, Rāvaṇa etc. visit these places, worship and adore in Chaityas and attend the religious assemblies.

(6) An approach to the Sacrifices :

In Vālmīki Rāmāyaṇa we find ample references of various sacrifices and sacrificial acts. Vimalasūri and

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Guṇabhadra had attempted to offer new allegorical meanings to these sacrificial acts for enhancing the Jaina tenets like Ahiṁsā, Saṁyama and Tapas.[7] The discussion about the meaning of the word 'अज'[7a] occurs in Vimalasūrī's and Guṇabhadra's Rāmāyaṇa. The protest against the Brahmnic sacrificial institution can be seen in the major Jain versions.

(7) Introducing the character of Narada :

It is well known that Narada is a Paurāṇika figure and is added to Vālmīki Rāmāyaṇa sporadically in Bālkāṇḍa and Uttarakāṇḍa. This interesting character is introduced often in all major Jain Rāmāyaṇas to accelerate the speed of the main story in convincing manner.[8] Nārada frequently visits Padma and Rāvaṇa, carries messages and gives detailed reports of various incidents. We find the peculiar character of Nārada in Ardhamāgadhī canons like Nāyādhammakahā[9] and Ṛṣibhāṣita.[10] 'The Episodes of Nārada in Jain Literature' is an interesting subject of a separate research paper.

(8) Rāmasetu :

Vālmīki describes the episode of Setubandha in Yuddhakāṇḍa. Pravarasena, a non-Jain poet has dedicated his whole epic to Setubandha or Rāvaṇavaho; written in Mahārāṣṭrī Prakrit in 5th Century A.D. Recently a lot of discussion is going on this controversial issue. The literary evidence of Kamba Rāmāyaṇa is quoted often in this matter. After a genuine scrutiny of major ten Jain Rāmakathās, it is known that none of these Rāmakathās have mentioned the building of a bridge to cross the ocean to enter Laṅkā. Vanaras and Rākṣasas used Vānarī and Khecarī Vidyas to cross the ocean.[11] Padma and Lakṣmaṇa reached Laṅkā with the help of Vimānas.[12]

(9) A Liberal Feminist Approach :

When we examine the Jain versions of Rāmāyaṇa, we come to know that on the whole, a liberal feminist perspective is reflected in the presentation of Rāmakathā. The observation

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

and scrutiny of each female character in the Rāmāyaṇas of both traditions is a vast subject; still some important points are noted here in order to illuminate the liberal approach of Jain authors towards women.

According to Vimalasūrī, Sītā is a daughter of King Janaka and queen Videhā.[13] The myth of finding Sītā in the box buried underground is totally absent in Paumacariya. Padma or Rama accepts Sītā in Laṅkā without any doubt or ordeal (Divya).[14] Vimalasūrī picturises the episode of banishment of Sītā in 'जणचिंतापव्व'[15], but the tone of Padma towards Sītā is less harsh than Vālmīki. Guṇabhadra and his literary followers had ended the Rāmakathā at the consecration of Rāma is Ayodhyā and had kept mum about the incidents of expulsion of Sītā. In Paumacariya, Sītā goes through the ordeal only once and after proving her 'pureness' voluntarily embraces Dīkṣā and goes away.[16]

In all major Jain versions, the episodes of Mantharā, Ahalyā and Śabarī are absent. They do not want to picturise Mantharā as 'jealousy incarnate'. Kaikeyī was very much anxious about Bharata's consecration to create interest of worldly things in him who was on the verge of renouncing the house and becoming a monk. Kaikeyī is not responsible for the banishment of Padma. The decision of Vanavāsa is taken by Padma and it is not the effect of the boon given to Kaikeyī. Kaikeyī's repent and her sincere efforts to persuade Rama from Aranyavāsa throw new light on Kaikeyī's character. The sympathetic attitude toward Kaikeyī is very peculiar to Vimalasūri and his followers.[17]

It is quite evident from the absence of Ahalyā episode that Jain authors do not wish to depict Padma as the uplifter of 'Patitā' woman like Ahalyā. by mere touch. Likewise they do not want to depict Padma as the spiritual uplifter of Śabarī merely by his presence.

Mandodarī, the chief queen of Rāvaṇa is presented by

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Valmiki only at the end after the slaughter of Rāvaṇa.[18] Jain Rāmāyaṇas, especially Vimalasūrī had developed the character of Mandodarī throughout his epic very skillfully.[19] Mandodarī persuades Rāvaṇa again and again to send Sītā back. She puts forth her protest against Rāvaṇa's unethical deeds. Her love and loyalty to Rāvaṇa is quite evident from her dialogues. The justice given to Mandodarī's character is remarkable.

We find very stray and strange references of Añjanā, the mother of Hanuman in Valmiki. In Kiṣkindhākāṇḍa it is said that Hanuman is 'औरसपुत्र' of Vāyu and 'क्षेत्रजपुत्र' of Kesarī.[20] For removing the blemish on the character of Añjanā, Vimalasūrī and particularly Svayambhū have reconstructed and developed the Añjanā episode into a full-fledged 'उपाख्यान'. The name of Hanuman's father is Pavanañjaya. In his character, there is a mixture of the characteristics of Vāyu and Kesarī. He is a brave egoist Vidyādhara and acts according to his male instincts and free wills. Añjanā bears painful sufferings created by him for twelve years, solacing her mind with the help of Karmasiddhānta. Pavanañjaya realizes his guilt and the episode ends on a happy note. In Jain tradition, Añjanā is enumerated among the sixteen adorable women.

With this brief account of some female characters in Jain Rāmāyaṇas, we can conclude that the Jaina approach to them is more humanistic, sympathetic and liberal than the contemporary Brahmanic tradition. It is very apt to note that in Jaina environment, right from the first Tīrthaṅkara Ṛṣabhadeva, the number of Sādhvīs and Śrāvikas is almost twice than that of Sādhus and Śrāvakas.[21]

The Striking Dissimilarities Found in Various Jaina Versions of Rāmāyaṇa

It is already noted that Paumacariya of Vimalasūrī is the first Jaina version of Rāmāyaṇa. He is well-acquainted with Valmiki Rāmāyaṇa, but has not mentioned his name. The

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

introductory portions of Paumacariya reveal quite openly the purpose of writing the story. The cause of the Jainification is explained as follows —

अलियं ति सव्वमेयं, भणंति जं कुकइणो मूढा (Paum Ca.3.15) and

अलियं पि सव्वमेयं, उववत्तिविरुद्धपच्चयगुणेहिं ।
न सद्दहंति पुरिसा, हवंति जे पंडिया लोए ॥ (Paum Ca.2.117)

It means, 'All this appears to me to be lies, contrary to reasoning and not worthy of belief by wise men'. It is quite clear by this remark that he has deliberately rejected the Brahmanic version of the same story.

Not only Vimalasūri but all Jaina authors have the same reason to refute the accounts of Rāma and Rāvaṇa that they have heard from the Kuśāstra-vadins i.e. expounders of false scriptures. According to them, Lord Mahāvīra had narrated the story to Gautama Gaṇadhara. They got the story through the tradition of their teachers. If this claim is true then one expects basic minimum similarities in all Jaina versions. The similarities are already noted beforehand. Here some of the striking differences in major Jain versions are taken into account.

(1) Daśaratha and his sons :

According to Paumacariya, Daśaratha was a king of Sāketa or Ayodhyā. He has four sons, Padma from Aparājitā, Lakṣmaṇa from Sumitrā and Bharata - Śtrughna from Kaikeyī.[22] According to Uttarapurāṇa, at first, Daśaratha was ruling at Varaṇasī. Rāma or Balabhadra was born in Vārāṇasī. Rāma's mother was Subālā. Afterwards Daśaratha transferred his capital to Ayodhyā. One of his queen gave birth to Lakṣmaṇa and the other to Śatrughna.[23] Triṣaṣṭismṛtiśāstra mentions four queens and four sons of Daśaratha.[24] In Daśaratha Jātaka, Daśaratha was ruling at Vārāṇasī. He has 16,000 queens. His chief queen gave birth to Rāma-paṇḍita, Lakṣmaṇa-kumāra and Sītā-devī.[25] There is no mention of Bharata - Śatrughna.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(2) Birth of Sītā :

Paumacariya mentions that king Janka's wife Videhā gave birth to a twin, Sītā and Bhāmaṇḍala. A Vidyādhara abducted Bhāmaṇḍala. In course of time he was infatuated with Sītā. After knowing the reality, he became a monk.[26] According to Uttarapurāṇa, Sītā was an offspring of Rāvaṇa and Mandodarī. A fortune-teller declares the female child as unlucky and Rāvaṇa abadones Sītā. Mārica keeps her in a box and buries underground at Mithilā, with ample wealth in the box. Some farmers find her and handover the child to Janaka and Vasudha.[27]

(3) Svayaṁvara of Sītā :

In Paumacariya, Janaka seeks help of Padma and Lakṣmaṇa against Mlecchas. He decides to give Sītā to Padma, a valiant warrior. Afterwards he arranges the Svayaṁvara.[28] We do not find reference of Rāvaṇa in this context. In Uttarapurāṇa the episode of Svayaṁvara is totally dropped.

(4) Kaikeyī and Her Demands :

In Paumacariya, Daśaratha declares his decision of renunciation and decision of the consecration of Padma. Bharata decides to follow the path of Liberation. Kaikeyī demands her boon which was kept previously with Daśaratha. She wants her son to be a king for engaging him in worldly life. Padma spontaneously declares his decision to go in forest. The span of fourteen years is not mentioned.[29]

The account of Kaikeyī's demands is totally dropped in Uttarapurāṇa. Daśaratha sends Rāma and Lakṣmaṇa to Vārānasī. Rāma became and king and Lakṣmaṇa, a crowned prince.[30]

However, It is very surprising that in Vāsudevahindi, (6th Century A.D.) Saṁghadāsagaṇi follows Valmiki in this whole account of fourteen-year' forest-wanderings of Rama.

In Daśaratha Jātaka, Kaikeyī demands royal throne for

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Bharata. Daśaratha accepts her demands, but comments on the deceitful and jealous nature of women and sends Rama to forest.

(5) The Slaughter of Vālī :

In Paumacariya, after a fierce war between Vālī and Sugrīva, Vālī becomes a Muni and attains Nirvāṇa.[31] In Uttarapurāṇa, Lakṣmaṇa kills Vālī.[32] Śīlāṅka follows Vālmīki and depicts Rāma as a killer of Vālī.[33]

(6) Story of Śambūka :

The story of Śambūka is dropped in Jaina Rāmāyaṇas except Paumacariya. In Paumacariya he is not depicted as a Śudra, but a son of Caṅdranakhā (Vālmīki's Śurpaṇakhā) and Kharadūṣaṇa. While observing austerities in the bamboo-thicket, Lakṣmaṇa kills Śambūka by mistake.[34]

(7) Abduction of Sītā :

This episode is picturised in Paumacariya and Uttarapurāṇa in different manners.

(8) Banishment of Sītā :

Vimalasūri depicts this account in Parvas 93 and 94. Raviṣeṇa and Hemcandra follow him. Saṁghadāsagaṇi, Guṇabhadra, Śīlaṅka and Āśādhara have completed their Rāmakathās at Rāmā's consecration.

CONCLUSIVE REMARKS :

When we consider the Jain versions of Rāmāyaṇa in totality, at first, readers' attention is attracted towards the reasonable changes done with positive attitude. Depicting the Vānaras and Rākṣasas as sub-human beings and not as wild animals and ferocious flesh-eaters is of course a positive and reasonable change. The sacrificial rituals involving violence are condemned and new approach is presented. Whenever there is an opportunity, the Jaina authors explain the incident by applying Doctrine of Karman. The narratives of Vālī and

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Śambūka are presented in entirely new manner. Comparatively sympathetic and liberal attitude towards women is seen throughout the Rāmakathā. Vimalasūri and his followers have picturised the ordeal of Sītā only once and Digambara authors, otherwise famous for their rigid attitude towards women, have dropped altogether the incident of the ordeal of Sītā.

In spite of all these plus-points, an objective analysis and valuation of the Jaina versions is needed.

If Jainas charge the Brahmanic Rāmāyaṇa as 'मतिविकल्पित' and claim that they got the tradition of Ramakatha from Lord Mahāvīra, naturally the readers expect consistency at least in the basic facts in all Jaina versions, which is not the reality. So the charge of 'मतिविकल्पना' applies to them in the same manner.

These Jainified versions are successful in creating Jaina environment but it is difficult for even Jaina readers to believe that there are so many Chaityas and Mandiras and places of pilgrimage and religious preaching and Dīkṣas during the forest wanderings of Padma and Sītā and elsewhere, at the time of Rāmāyaṇa. These new renderings of Jaina authors are not popular among the Jainas even today due to the popularity of Vālmīki-Rāmāyaṇa, which is deep-rooted in the society. An unbiased reader is compelled to admit that beautiful descriptions of nature and seasons, the presentation of dialogues and especially the poetic and aesthetic values of Vālmīki -Rāmāyaṇa are much more lacking in the Jaina versions. The total Jainification seems to be the cause of this lacuna. That is the reason why the Jaina authors like Saṁghadāsagaṇi and Śīlāṅka have followed the story-line of Rāmakathā of Vālmīki with some reasonable and rational changes here and there.

Due to the disparity in various renderings, lack of poetic values and exaggerated Jainification, Jaina Rāmkathā is not very popular even among Jainas.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Comparatively Kṛṣnakathā which is introduced in convincing manner is much more popular among Jainas, but it is a separate thought-line for further research.

References

1. त्रिलोकप्रज्ञप्ति ४.५१०, ५११; विशेषावश्यकभाष्य गा. १७४१-१७५०; आवश्यक निर्युक्ति ३७०-३७५; आवश्यक भाष्य ३९-४३
2. पउमचरिय ५.२५७; ६.८६-९०; चउप्पन्न महापुरिसचरिय पृ. १७५; वसुदेवहिंडी
3. पउमचरिय १०२.१४१-१४३; उत्तरपुराण ६८.६८२-६८६
4. पउमचरिय १७.६०-८२; पउमचरिउ संधी १८, १९
5. पउमचरिय ३०.४९-५२
6. पउमचरिय १०२.४९; उत्तरपुराण ६८.७२१
7. पउमचरिय ११.७६-८१

7A. पउमचरिय ११.२४-२६; त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र पृ. ८८ श्लोक ३६

8. पउमचरिय ११.४९-६८; उत्तरपुराण ६८.८९-९९; ६८.२८२-२८४
9. नायाधम्मकहा श्रुतस्कंध १ अध्ययन १६
10. ऋषिभाषित अध्ययन १
11. पउमचरिय ५४.३४-३५; उत्तरपुराण ६८.५०९
12. पउमचरिय ५४.३८; उत्तरपुराण ६८.५२२
13. पउमचरिय २६.७५
14. पउमचरिय ७६.१५; उत्तरपुराण ६८.६४२
15. पउमचरिय ९३
16. पउमचरिय १०२.३, ४९
17. पउमचरिय ३१; (पद्मचरित) पद्मपुराण पर्व ३१, ३२
18. वाल्मीकि रामायण युद्धकाण्ड सर्ग १११
19. पउमचरिय ९.१०-१९; ४६.२७-४४; ५३.४०-४७; ६६.३२-३५; ७०.८-६१
20. किष्किधाकाण्ड सर्ग ६६ श्लोक १०-३०
21. कल्पसूत्र (J) गाथा क्र. १३४-१३७
22. पउमचरिय २५.१-१४
23. उत्तरपुराण ६७.१४८-१५०
24. त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र ७२.१७-१९
25. दशरथजातक पृ. १०५
26. पउमचरिय २६; २७; २८
27. उत्तरपुराण ६८.१७-२७
28. पउमचरिय २८.४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

29. पउमचरिय ८१ 30. उत्तरपुराण ६८.५१-८०
31. पउमचरिय ९.४६ 32. उत्तरपुराण ६८.४६४
33. चउप्पन्नमहापुरिसचरिय पृ. १७५ 34. पउमचरिय ४४.३०-३९

List of Reference-Books

1. आवश्यकसूत्र with Niryukti and Haribhadra's Comm., आगमोदयसमिति, महेसाणा, १९१६
2. चउप्पन्नमहापुरिसचरियं : शीलांकाचार्य, सं.पं. अमृतलाल भोजक, प्राकृत ग्रंथ परिषद्, वाराणसी, १९६१
3. जैन साहित्य का बृहद् इपिहास (भाग-६) : सं. दलसुख मालवणिया, डॉ. मोहनलाल मेहता, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, १९७३
4. Kalpasutra : Bhadrabāhu, K.C.Lalwani, Motilal Banarasidas, Delhi, 1979
5. Mahāpurāna (Uttarpurāna) : Guṇabhadra, Edited - Pannālāl Jain, Bhāratiya Jnānapitha Kāshi, 1954
6. पद्मपुराण : रविषेण, सं. - पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५९
7. Paumacariya : Vamalasūri, Ed. Jacobi, Prakrit Text Soceity, Varanasi-5, 1962
8. Purāṇa Perennis : Ed. by Wendy Doniger, Indian Books Centre, Delhi, 1993
9. संस्कृत साहित्य का इतिहास : सं. बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, काशी, १९४५
10. सिद्धार्थजातक : खंड ४, दुर्गा भागवत, वरदा बुक्स, पुणे १६, १९७८
11. श्रीमद्वाल्मीकिय रामायण : गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०२४
12. तिलोय - पण्णत्ती : यतिवृषभ, सं. हीरालाल जैन, आदिनाथ उपाध्याय, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर, १९४३
13. Triṣaṣtiśalākāpuruṣacaritra : Vol. IV, Oriental Institute, Baroda, 1954
14. त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्रम् : आशाधरविरचित, माणिकचंद ग्रंथमाला, मुंबई, १९३७
15. वसुदेवहिण्डि (प्रथम खण्ड) : संघदासगणी, सं. मुनि पुण्यविजय, जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, १९३०
16. विशेषावश्यकभाष्य (२) : जिनभद्रगणी, सं. दलसुख मालवणिया, एल्.डी. भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद, १९६८

(Prof. Jain Chair, Dept. of Philosophy, University of Pune.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपाध्याय सकलचन्द्रकणि रचित

ध्यान-दीपिका (संस्कृत) संग्रह ग्रन्थ है

- म. विनयसागर

स्वास्थ्य की दृष्टि से एवं मन को साधित करने की दृष्टि से जीवन में योग का विशिष्ट प्रभाव है । योग की साधना से ही व्यक्ति योगी बनता है और त्रियोग को स्वाधीन कर केवलज्ञानी बनकर सिद्धावस्था को भी प्राप्त होता है । प्राचीन योग के सम्बन्ध में साधना की प्रणाली अवश्य रही होगी। आचारांगसूत्र में प्रयुक्त विपष्य शब्द को लेकर यह सिद्ध है कि उस समय भी ध्यान साधना की प्रणाली थी । जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण कृत ध्यानशतक प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है । आप्त आचार्य हरिभद्रसूरि ने आवश्यकसूत्र की बृहद्टीका में इस ग्रन्थ को पूर्ण रूप से उद्धृत किया है । आचार्य हरिभद्र के योग सम्बन्धी चार ग्रन्थ प्राप्त होते हैं और कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य का योगशास्त्र प्रसिद्ध ही है । न्यायाचार्य यशोविजयजी का भी योग सम्बन्धी विषयों पर अधिकार था ।

ध्यानदीपिका नामक ग्रन्थ के दो संस्करण प्राप्त होते हैं । एक संस्करण संस्कृत भाषा का जिसके प्रणेता उपाध्याय सकलचन्द्रगणि माने गए हैं । सकलचन्द्रगणि के इस ग्रन्थ का उल्लेख 'जिनरत्नकोष' और 'जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास' में भी किया गया है । जिनरत्नकोष के अनुसार सकलचन्द्रगणि कृत ध्यानदीपिका कि एक प्रति डेला उपाश्रय, अहमदाबाद में सुरक्षित है । सम्भवतः इस प्रति का या अन्य प्रति का उपयोग करके योगनिष्ठ आचार्य विजयकेसरसूरिजी महाराज ने विस्तृत विवेचन/टीका लिखी। इसका प्रकाशन मुक्ति चन्द्र श्रमण आराधना ट्रस्ट, पालीताणा से सन् २००१ में हुआ है । आचार्यश्री ने इसका अनुवाद गुजराती में किया था और हिन्दी अनुसार प्रो. बाबूलाल टी. परमार ने किया था । अनुवादक श्री विजयकेसरसूरिजी महाराज स्वयं ही योगनिष्ठ साधक थे, अपने अनुभव के साथ इस विस्तृत विवेचन को लिखा है, जो कि योगसाधकों के लिए अत्यन्त उपयोगी है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरा ग्रन्थ ध्यानदीपिका चतुष्पदी के नाम से राजस्थानी भाषा में है। इस चतुष्पदी के प्रणेता चौवीसी और अध्यात्मगीताकार उपाध्याय श्री देवचन्दजी हैं। जो कि युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि की परम्परा में राजसागर के शिष्य थे। इस चतुष्पदी की रचना विक्रम संवत् १७६६ मुलतान में की गई है। भणसाली गोत्रीय मिठुमल के आग्रह से यह रचना की गई है। यह रचना छः खण्डों में है और योगनिष्ठ स्वर्गीय आचार्य श्री बुद्धिसागरसूरि ने सम्पादन कर श्रीमद् देवचन्द्र भाग-१ में विक्रम संवत् १९७४ में प्रकाशित किया है।

जैसा कि उपाध्याय देवचन्दजी ने इस चतुष्पदी की प्रशस्ति के रूप में लिखा है कि मैंने शुभचन्द्राचार्य कृत ज्ञानार्णव ग्रन्थ जो संस्कृत भाषा में है उसका राजस्थानी भाषा में अनुवाद किया है, जिसमें अट्ठावन ढालें हैं -

पंडितजन मनसागर ठाणी, पूरणचंद्र समान जी।
सुभचंद्राचारिजनी वाणी, ज्ञानीजन मन भाणी जी॥ ध्यानक० २

भविक जीव हितकरणी धरणी, पूर्वाचारिज वरणी जी।
ग्रंथ ज्ञानार्णव मोहक तरणी, भवसमुद्र जलतरणी जी। ध्यानक० ३

संस्कृतवाणी पंडित जाणे, सरव जीव सुखदाणी जी।
ज्ञाताजनने हितकर जाणी, भाषारूप वखाणी जी। ध्यानक० ४

ढाल अठावन षड अधिकारु, शुद्धातमगुण धारु जी।
आखे अनुपम शिवसुखवारु, पंडितजन उरहारु जी॥ ध्यानक० ५

उपाध्याय देवचन्द्रजी तो ध्यानदीपिका ग्रन्थ का आधार शुभचन्द्राचार्य कृत ज्ञानार्णव को मानते हैं। जबकि सकलचन्द्रगणि ने इसका कोई उल्लेख नहीं किया है। अतः ज्ञानार्णव का और सकलचन्द्रगणि कृत ध्यानदीपिका का समीक्षण आवश्यक है।

शुभचन्द्राचार्य रचित ज्ञानार्णव ग्रन्थ, जैन संस्कृत संरक्षक संघ, सोलापूर से सन् १९७७ में सानुवाद प्रकाशित हुआ था। इसके अनुवादक पंडित बालचन्द्र शास्त्री थे। इसका रचना काल १२वीं शताब्दी क है। इसमें ३७ अधिकार हैं। श्लोक संख्या २२३० है। ज्ञानार्णव की एक टीका लब्धिविमलगणि कृत श्वेताम्बर प्रतीत् होती है। रचना समय १७२८ और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेखकाल १७३० है । इसकी प्रति दिगम्बर जैन मन्दिर गोधों का जयपुर, वेस्टन नं. १९४ है । यह लब्धिविमल श्वेताम्बर जैन यति ही प्रतीत होता है । (राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची चतुर्थ भाग पृ. १०८, नं. १३९३) सकलचन्द्रगणि कृत ध्यानदीपिका में कुल २०६ पद्य हैं । दोनों ग्रन्थों को देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि ज्ञानार्णव विषयानुसार ३९ विभाजन में प्राप्त होता है जबकि ध्यानदीपिका में विभाजन नहीं है किन्तु अनुकरण तो ज्ञानार्णव के अनुसार ही है । ऐसा प्रतीत होता है कि ज्ञानार्णव का यह संक्षिप्त संस्करण हो । ध्यानदीपिका में लगभग २५ पद्य तो वैसे के वैसे ही इसमें उद्धृत हैं । लगभग ३० पद्यों के प्रथम चरण या चरणों का साम्य है । तुलना की दृष्टि से देखिये :-

ध्यानदीपिका	ज्ञानार्णव
एकचिन्तानिरोधो यस्तद्ध्यानं भावनाः पराः ।	एकचिन्तानुरोधो यस्तद्ध्यानं भावनाः पराः ।
अनुप्रेक्षार्थचिन्ता वा ध्यानसन्तानमुच्यते ॥६६॥	अनुप्रेक्षार्थचिन्ता वा तज्ज्ञैरभ्युपगम्यते ॥११९५॥
वीतरागो भवेत् योगी यत्किञ्चिदपि चिन्तयन् ।	वीतरागो भवेद्योगी यत्किञ्चिदपि चिन्तयेत् ।
तदेव ध्यानमाम्नातमतोऽन्ये ग्रन्थविस्तराः ॥६८॥	तदेव ध्यानमाम्नातमतोऽन्ये ग्रन्थविस्तराः ॥२०२९॥
अनिष्टयोगजं चाद्यं परं चेष्टवियोगजम् ।	अनिष्टयोगजन्माद्यं तथेष्टार्थात्ययात्परम् ।
रोगार्त्तं च तृतीयं स्यात् निदानार्त्तं चतुर्थकम् ॥७०॥	रुक्प्रकोपात्तृतीयं स्यान्निदानात्तुर्यमङ्गिनाम् ॥१२०३॥
राज्यैश्वर्यकलत्रपुत्रविभवक्षेत्रस्वभोगात्यये ।	राज्यैश्वर्यकलत्रबान्धवसुहृत्सौभाग्यभोगात्यये,
चित्तप्रीतिकरप्रशस्तविषयप्रध्वंसभावेऽथवा ।	चित्तप्रीतिकरप्रसन्नविषयप्रध्वंसभावे ऽथवा ।
सन्त्रासभ्रमशोकमोहविवशैर्यं चिन्त्यतेऽहर्निशम् ।	सन्त्रासभ्रमशोकमोहविवशैर्यत्खिद्यतेऽहर्निशं,
तत्स्यादिष्टवियोगजं तनुमतां ध्यानं मनोदुःखदम् ॥७३॥	तत्स्यादिष्टवियोगजं तनुमतां ध्यानं कलङ्कास्पदम् ॥१२०८॥
दृष्टश्रुतानुभूतैस्तैः पदार्थैश्चित्तरञ्जकैः ।	दृष्टश्रुतानुभूतैस्तैः पदार्थैश्चित्तरञ्जकैः ।
वियोगे यन्मनःक्लेशः स्यादार्त्तं चेष्टहानिजम् ॥७४॥	वियोगे यन्मनः खिन्नं स्यादार्तं तद्द्वितीयकम् ॥१२०९॥

ध्यान दीपिका के पद्याङ्क कोष्ठक रहित हैं और ज्ञानार्णव के पद्याङ्कः कोष्ठक सहित हैं ।

७५ (१२१०); ७८ (१२१४); ८२ (१२२५); ८७ (१२३९); ८८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१२३८); ९० (१२४९); ९६ (१२६४); ११७ (१३२४); १२० (१६२१); १२३ (१६४०); १४२ (१८८६); १४३ (१८८७); १४४ (१८८८); १४५(१८८९); १४६ (१८९०); १४८ (१८९२); १५४ (१९२०); १६८ (२०७६); १७३ (१५०५); १७४ (१५०६); १७५ (१५०७); १७८ (१५७५); १९२ (२१२५); १९७ (२१४८); १९८ (२१४९); १८१ (२११४); १९९ (२१५२)

प्रारम्भिक चरणों की तुलना कीजिए :-

१२ (१२८३); २१ (११७); ३२ (१८०); ३७ (१९४); ४३ (११७); ४७ (२७०); ५५ (२८८); ६१ (११६८); ७२ (१२०६); ९२ (१२५१); ९६ (१२६४); १०० (१४६२); ११२ (१२८३); १२९ (१६९०); १३० (१२६९); १३७ (१८७७); १३८ (१८७८); १३९ (१८८०); १४७ (१८९१); १६२ (१९९२); १७० (१९४१); १७८ (१५७४); १८१ (२११४); २०० (२१५२)

इस तुलनात्मक अध्ययन से प्रतीत होता है कि ज्ञानार्णव का आधार लेकर सकलचन्द्रगणि ने संग्रह ग्रन्थ के रूप में इस ध्यान दीपिका का निर्माण किया है । कुछ श्लोक पूर्ण रूप से कुछ एक चरण के रूप में उद्धृत करके शेष श्लोकों की रचना स्वयं ने की हो । अतः यह कहा जा सकता है कि यह मौलिक ग्रन्थ न होकर ज्ञानार्णव का आभारी है ।

सम्भव है श्री हेमचन्द्राचार्य कृत योगशास्त्र के साथ तुलना करने पर अनेक पद्य यथावत् प्राप्त हो सकते हैं ।

अनुवादक श्री विजयकेसरसूरिजी महाराज ने ध्यान दीपिका के श्लोक संख्या २०६ में निम्न पद्य उद्धृत किया है जो कि ज्ञानार्णव में नहीं है :-

''चन्द्रार्कदीपालिमणिप्रभाभिः किं यस्य चित्तेऽस्ति तमोऽस्तबोधम् ।
तदन्तकर्त्रीं क्रियतां स्वचित्ते ज्ञान्यंगिनः ध्यानसुदीपिकेयम् ॥२०६॥''

इस श्लोक के अनुवाद में कर्त्ता के सम्बन्ध में आचार्यश्री लिखते हैं :-

''इस श्लोक के प्रारम्भ में आये हुए चन्द्र शब्द से इस ग्रन्थ के कर्त्ता सकलचन्द्र उपाध्याय का नाम भी प्रकट होता है, क्योंकि पूर्णिमा का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्र सकल-अक्षय-अखंड-पूर्ण होता है और उस पर से कर्त्ता सकलचन्द्र ने अपना गुप्त नाम इसमें छिपाया है । और अर्क, दीपालि और मणि के संख्या वाचक अंकों की गिनती पर से यह ग्रन्थ संवत् १६२१ में रचा गया हो यह भी सूचित होता है ।'' (पृष्ठ संख्या २३६)

इस श्लोक से जो सकलचन्द्र ग्रहण किया गया है वह द्राविडी प्राणायाम जैसा प्रतीत होता है । स्पष्टतः सकलचन्द्र का उल्लेख हो ऐसा प्रतीत नहीं होता है । उसी प्रकार अर्क, दीपाली और मणि से निर्माण संवत् का ग्रहण किस आधार से किया है प्रतीत नहीं होता । मेरी दृष्टि में इन शब्दों से १६२१ निकालना दुष्कर कार्य है ।

यह सम्भव है कि ग्रन्थ की प्रान्त पुष्पिका में ''श्री सकलचन्द्रगणि कृता ध्यानदीपिका'' लिखा हो और उसी के आधार पर अनुवादक आचार्यश्री ने इस ग्रन्थ को श्री सकलचन्द्रगणि कृत मानकर ही उल्लेख किया हो ।

यह निर्णय करना विज्ञों का कार्य है कि यह ध्यान दीपिका ज्ञानार्णव के आधार से बना हुआ संग्रह ग्रन्थ है या मौलिक ग्रन्थ है ?

श्री सकलचन्द्रोपाध्याय श्री विजयहीरसूरिजी के राज्य में विद्यमान थे। अच्छे विद्वान् थे । सतरह भेदी पूजा आदि इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं । श्री देसाई ने कुछ रचनाओं को १६४४ के पूर्व और कुछ रचनाओं को १६६० के पूर्व माना है । अतः इनका समय १७वीं शताब्दी है ।

C/o. प्राकृत भारती
जयपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org